योगविद्या

वर्ष 4 अंक 2
फरवरी 2015
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2015

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 62 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर फोटो : स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, मुम्बई, 2014

अन्दर के रंगीन फोटो : 1: श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती; 2-3: श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, मुम्बई, 1978 & 1982; 4-8: स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की मुम्बई यात्रा, 2014

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

प्रेम की साधना

प्रेम ही जीवन की आधारशिला है। प्रेम से ही इस जगत् की उत्पत्ति हुई है, प्रेम में ही इसकी स्थिति है और प्रेम में ही इसका लय है। प्रेम ही सत्य है, प्रेम ही परमात्मा है। जीवन की सार्थकता प्रेम में निहित है। प्रेम का पाठ सीखने के लिए ही आप जी रहे हैं। प्रेम ईश्वर-साक्षात्कार का सीधा और सरल मार्ग है। मीरा, राधा, तुकाराम, तुलसीदास, गौरांग महाप्रभु, यीशु, मंसूर आदि की प्रेरक शक्ति प्रेम ही रही है।

सब मानव एक हैं। हम सब एक ही वृक्ष के फल-फूल हैं। इस जगत् में कोई भी पराया नहीं। पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों–सबको अपना प्रेम वितरित करें। प्रेम में ही जीयें। प्रेम में ही श्वास लें। प्रेम के ही गीत गायें। प्रेम का ही भोजन करें। प्रेम का ही पान करें। प्रेम की बातें करें। प्रेम की प्रार्थना करें। प्रेम का ही ध्यान करें।

–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर – 811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद – 121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 4 अंक 2 · फरवरी 2015
(प्रकाशन का 53 वाँ वर्ष)

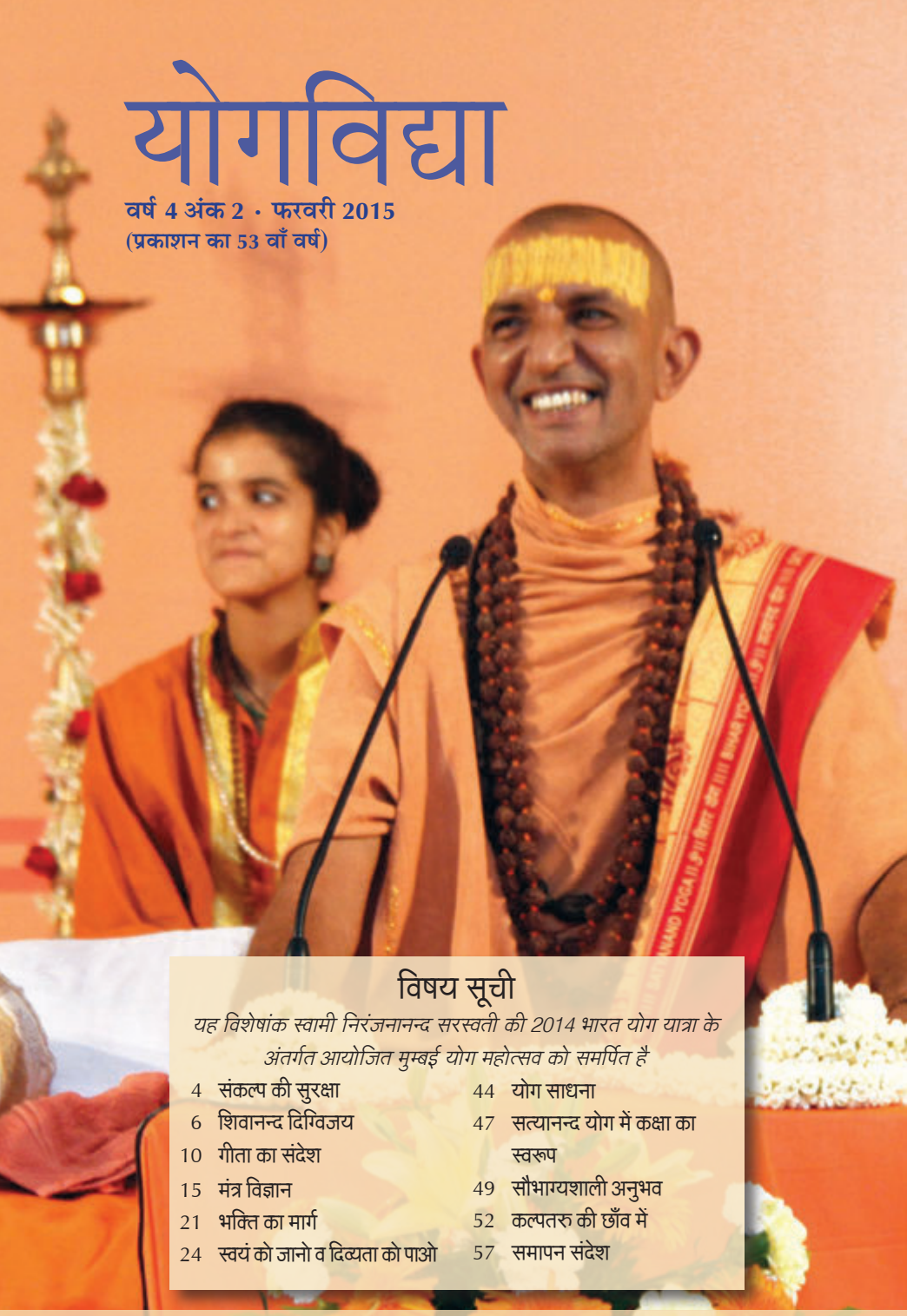

विषय सूची

यह विशेषांक स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की 2014 भारत योग यात्रा के अंतर्गत आयोजित मुम्बई योग महोत्सव को समर्पित है

4 संकल्प की सुरक्षा
6 शिवानन्द दिग्विजय
10 गीता का संदेश
15 मंत्र विज्ञान
21 भक्ति का मार्ग
24 स्वयं को जानो व दिव्यता को पाओ
44 योग साधना
47 सत्यानन्द योग में कक्षा का स्वरूप
49 सौभाग्यशाली अनुभव
52 कल्पतरु की छाँव में
57 समापन संदेश

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

संकल्प की सुरक्षा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आप लोग अपने गुरु या योग शिक्षक से पूछते हैं कि उच्च रक्तचाप या मधुमेह के लिये हम कौन-सा अभ्यास करें और आपका शिक्षक आपको बतलाता है कि ऐसा अभ्यास करो तो तुम्हें लाभ होगा। आप कुछ समय तक उसको करते हो, लेकिन उसे कायम नहीं रख पाते हो क्योंकि आपको क्या लाभ हो रहा है, उसको तत्काल देखना चाहते हो और प्रतीक्षा नहीं करते हो कि लाभ का जो प्रारब्ध है उस अनुसार लाभ प्रकट होगा।

आम के एक बीज को अगर हम जमीन में डालें और रोज उसे निकालने लगें और देखने लगें कि यह आज अंकुरित हुआ है या नहीं तो क्या आम का वह बीज कभी अंकुरित हो पायेगा? अगर उस बीज को अंकुरित करना है तो डाल दो धरती के भीतर, उसे निकालो मत। उसे देखने का भी प्रयास मत करो। लेकिन उसकी सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध करो। उसे पोषक तत्त्व और जल दो, उसके लिये बाड़ा बना दो ताकि जंगली पशु उस पौधे को न खाएँ। एक बार जो बीज डाल देते हो उसे बार-बार निकालो मत, केवल उसकी सुरक्षा की व्यवस्था करो।

यही सिद्धान्त आपको अपने जीवन में भी लागू करना है। समस्या निश्चित रूप से हर व्यक्ति के जीवन में होती है, चाहे वह राजा हो या रंक या फकीर। ये तीनों उस समस्या से अपने आपको कैसे निकालते हैं, यह उन तीनों की अपनी व्यक्तिगत बुद्धि, समझ और परिश्रम की देन है।

परेशानी से तो हम सब गुजर रहे हैं और उस परेशानी से मुक्त होने के लिये हम अपने जीवन को सुधारने का प्रयास भी कर रहे हैं। नकारात्मकता को दूर करने के लिये हम सकारात्मकता के बीजों को आरोपित कर रहे हैं, लेकिन उनकी सुरक्षा नहीं कर रहे हैं। जब आप एक लक्ष्य या संकल्प को लेकर चलते हो तो उस संकल्प की रक्षा करो और उसे दूसरों के प्रभाव से विक्षिप्त मत होने दो।

कोई आपके यहाँ आता है और आपको योगाभ्यास करते देख पूछता है कि क्या कर रहे हो। आप कहते हो कि मैं मधुमेह को ठीक करने के लिये अपना अभ्यास कर रहा हूँ। वह कहता है कि इस अभ्यास को भी करो तो इससे तुम्हारा उपचार और अच्छा होगा। आप उस अभ्यास को भी शामिल कर लेते हैं, फिर इसी तरह तीसरे को भी शामिल कर लेते हैं, चौथे को भी शामिल कर लेते हैं, यह सोचकर कि लोग हमें जितने सुझाव लोग दे रहे हैं अगर हम सभी सुझावों का पालन करें तो हो सकता है कि हमारा मधुमेह दस दिन पहले ठीक हो जाए, महीना भर पहले ठीक हो जाए।

लेकिन उससे होता क्या है? हमारा जो मूल संकल्प और लक्ष्य था, उससे हम अपने आपको दूर पाने लगते हैं। उसके बाद फिर हम अपना लक्ष्य भी भूल जाते हैं। दूसरी विधियों और अभ्यासों में ही हमारा मन चक्कर काटते रहता है कि अगर यह अभ्यास मेरे लिये कारगर सिद्ध नहीं हुआ तो मैं दूसरे का प्रयोग करूँगा। वह सिद्ध नहीं हुआ तो तीसरे को आजमाऊँगा, चौथे को आजमाऊँगा। अगर गुरु एक बार तुमसे कहता है कि ऐसा करो, इससे तुमको फायदा है, तो कम-से-कम उस पर तो विश्वास करो।

उसकी बातों को पकड़कर चलो और अपनी भावना, अपने संकल्प, अपने विचारों को सुरक्षित रखो। उन्हें दूसरों के प्रभावों से प्रदूषित मत होने दो। एक बार आपका संकल्प प्रदूषित हो गया तब फिर साधना या अभ्यास का कोई महत्त्व नहीं रहेगा।

यह जीवन का एक सरल सिद्धान्त है, जिसके लिये किसी लम्बे-चौड़े दर्शन को बताने की आवश्यकता नहीं। जीवन में आपका जो सामान्य व्यवहार होता है, उसी को देखो और अगर उसे परिवर्तित कर दोगे, परिष्कृत कर दोगे, तो जीवन का वह सामान्य व्यवहार योग में परिवर्तित हो जायेगा, योग बन जाएगा।

–15 अप्रैल 2014, चेम्बुर, मुम्बई

शिवानन्द दिग्विजय

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

(स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, अपने महान् गुरु, स्वामी शिवानन्द जी की सन् 1950 की चिरस्मरणीय अखिल भारतीय दिग्विजय यात्रा के प्रत्यक्ष साक्षी और अभिन्न सहभागी रहे। उनके द्वारा लिखित पुस्तक 'शिवानन्द दिग्विजय' से इस अद्भुत यात्रा के बम्बई चरण की कुछ प्रेरणास्पद झांकियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं)

28 अक्टूबर। विगत रात्रि के अथक परिश्रम के कारण हमारे नेत्रों में अग्नि-ज्वाला की भीषणता सी व्याप रही थी। नेत्र खोले नहीं खुलते थे। परन्तु स्वामी जी पूर्ण स्वस्थ थे। उनमें वही ऊर्जा और स्फूर्ति थी। अत: 'वनिता विश्राम कन्या विद्यापीठ' तथा 'सुनीता विद्यालय' में क्या-क्या हुआ, हमें प्रत्यक्ष ज्ञात नहीं। परन्तु श्रुतिप्रमाण से प्रतीत हुआ कि अत्यन्त आनन्ददायी तथा हार्दिक-स्वागत का आयोजन हुआ था और स्वामी जी ने भी अत्यन्त मधुर स्वरों में कन्याओं को अपना सन्देश दिया।

जब स्वामी जी लौट कर 'लक्ष्मी बाग' में आए तो रविरथी आकाश की आधी सीमा नाप चुका था।

सायंकाल को 6 बजे तक स्वामी जी ने भक्तों के आवास-गृहों को पवित्र किया। उन्हें जीवन को सफल तथा संस्कृत बनाने का उपदेश दिया। 'संसार के प्रत्येक कर्म को कुशलतापूर्वक करते हुए, प्रत्येक प्राणी आत्म-सिद्धि को प्राप्त कर सकता है।' स्वामी जी ने कीर्त्तन और भजन द्वारा सबको यही उपदेश दिया कि 'मनुष्य कभी भी ईश्वर-नाम को न भूले, क्योंकि जीवन की सच्ची सफलता ईश्वर-भक्ति पर निर्भर रहती है।' साधारण श्रेणियों के व्यापारियों के परिवारों को मितव्ययिता का उपदेश देते हुए आपने कहा कि 'वैभव-विलास में रत्ती भर द्रव्य भी व्यय नहीं करना चाहिए।'

इस प्रकार स्वामी जी ने द्वार-द्वार पर जाकर, धर्म और संस्कृति में छिपे लोकधर्म तथा मानव-कर्त्तव्य के पवित्र-मन्त्र का उच्चारण करते हुए, सायंकाल के 6 बजे 'ऑल इण्डिया रेडियो' के बम्बई स्टेशन में प्रवेश किया और अपना सन्देश दिया। तदुपरान्त महाराज ने महामण्डलेश्वर श्री महेश्वरानन्द जी के आश्रम में आयोजित सत्संग में कीर्त्तन करने और आशीर्वाद देने के हेतु प्रयाण किया। रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत हो रहा था।

अश्वत्थ-विटप के नीचे सत्संग प्रारम्भ हुआ। वेदस्वर के पर्जन्यनाद ने हृदय-प्रदेश के दानव पर कुलिशाघात किया। महिलाओं और बालकों, कन्याओं और वृद्धों, युवकों और महिलाओं का अहोपुण्य तीर्थीकरण था वह।

सत्संग के उपरत: स्वामी जी ने 'लक्ष्मी बाग' में प्रवेश किया तो अश्विनोदयकाल का समारम्भ होने वाला था।

* * * *

29 अक्टूबर। हमारे बम्बई-निवास का अन्तिम दिन था। अत: प्रात:काल होते ही नगर के महोच्चपदस्थ नागरिकों का आना प्रारम्भ हो गया। स्वामी जी से यह प्रार्थना की गई कि वे अनाच्छादित रथ पर नगर भ्रमण करें, अन्यथा जन-पवन का वेग 'लक्ष्मी बाग' में सहन नहीं हो सकेगा। अत: अनाच्छादित रथ के ऊपर स्वामी जी विराजे। नगर में सहसा ही यह समाचार प्रसारित हो गया कि स्वामी जी सबको दर्शन देने आ रहे हैं। दामिनी के समान सबके हृदय स्पन्दित होने लगे। अटारियाँ कुलवधुओं से सजने लगीं। मार्ग के दोनों ओर पुरवासियों की पंक्तियाँ शोभित होने लगीं।

ऊपर से पुष्पवर्षा हो रही थी। सिंदूर की लाली वायुमंडल में नृत्य कर रही थी। स्थान-स्थान पर कीर्त्तन और भजन का उपक्रम प्रचलित हो रहा था। झांझ और करतालें, मृदंग और शहनाइयाँ और मँजीरे बज रहे थे। वह शान्ति का शुभ-मुहूर्त्त था, जब जनता ने शान्तिपूर्वक शान्ति के अवतार को देखा, जब जन-जन की वाणियों से रामनाम प्रस्फुरित हो रहा था, प्रणव की ध्वनि जाग रही थी, वेद के गीत गूँज रहे थे और हरिनाम की पयस्विनी उदित हो रही थी। मूक भी गाते थे और अशक्तांग भी नाचते थे।

यह था हमारी बम्बई नगरी का दृश्य, जिसे लक्षश: नागरिकों ने देखा और अपने हृदय में अंकित कर लिया। उन्हें ज्ञान हो गया कि किसलिए उनको स्वामी जी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। बम्बई पवित्रतीर्थ सन्तों की भूमि है। तत्फलत: उनके हृदयों में सन्त-परम्परा के संस्कार सजीव हैं; जिन्हें अपने जीवन से निर्मूल करना किसी भी प्राणी के लिए सम्भव नहीं और जो समय पाते ही अंकुरित हो जाते हैं और दर्शनमात्र से ही पनपने लगते हैं तथा स्मृतिपरायण होने से फल भी जाते हैं!

* * * *

तदुपरान्त हम 'शान्ता क्रूज विमान केन्द्र' के पास पहुँचे जहाँ बम्बई प्रान्तीय 'दिव्य जीवन मंडल' की आधार-शिला को स्वामी जी ने अपने करकमलों से प्रतिष्ठित करना था। श्रीयुत् स्वामी कृष्ण चैतन्य जी महाराज के उद्योग से दिव्य जीवन मंडलान्तर्गत इस शाखा के शिलान्यास के लिए, नगर-कोलाहल से अतिदूर, वह सुन्दर क्षेत्र निश्चित किया हुआ था।

बम्बई-प्रान्तीय 'दिव्य जीवन मंडल' की आधार-शिला को संप्राणित कर, स्वामी जी शान्ता क्रूज (उप-नगर) में प्रविष्ट हुए। प्रवेश करते ही हमने अपूर्व

जन-समारोह देखा। कह नहीं सकते कि कहाँ तक वह जनक्षेत्र विस्तृत था। हमने तो मार्गों और उपमार्गों, झरोखों और अटारियों, छतों तथाच तिल-तिल भर भूमि को जनपदसमाकीर्ण देखा। अपने सुन्दर भारतीय वेष में जनता महासौन्दर्यान्वित दृष्टिगत हो रही थी; जिसने सत्यप्रधान शान्ति के महारथी का अभिनन्दन किया।

15 मिनट तक स्वामी जी ने उन्हें हरिनाम का माहात्म्य और महद्-पुण्य प्रदान किया। तत्फलत: वे नागरिक आध्यात्मिक रीति का ही अनुपालन करते हुए, अपने गृहमग की ओर शान्तिपूर्वक पग धरते हुए, प्रस्थित हुए। जनता के विस्तारित हो जाने पर स्वामी जी श्री पुरोहित-परिवार को दर्शन देने उनके आवासगृह में प्रविष्ट हुए। महामण्डलेश्वर श्री महेश्वरानन्द जी महाराज भी वहाँ विद्यमान थे तथा दिग्विजय मण्डल के अन्यान्य स्थानीय संचालक-सहयोगी भी।

पादपूजा का उपक्रम प्रारम्भ हुआ तथा सभी उपस्थित महानुभावों ने बम्बई के नागरिकों का प्रनिधित्व करते हुए स्वामी जी की पादपूजा की। दिन के दो बज चुके थे।

सायंकाल के 4 बजते ही स्वामी जी ने सुविख्यात 'भारतीय विद्या भवन' में पदार्पण किया। बम्बई विश्वविद्यालय के उप-कुलपति जस्टिस् श्री भगवती जी ने स्वामी जी का अभिनन्दन सम्पन्न किया। 'भारतीय विद्या भवन' नगर के विद्वानों से आपूर्ण था।

माननीय कुलपति महोदय ने अपने विवरण में स्वामी जी का पूर्ण परिचय दिया और उनके लोकोत्तर ज्ञानयज्ञ की प्रशंसा की–'स्वामी जी बीसवीं शताब्दी के महान् दार्शनिक, योगी, सन्त तथा कर्मयोगपरायण महात्मा हैं...!' इस प्रकार

के वाक्यों के नि:सृत होते ही जनता ने करतल-ध्वनि द्वारा माननीय उप-कुलपति के विचारों का अनुमोदन किया।

अपने संदेश में स्वामी जी महाराज ने योग की प्रणाली का व्यावहारिक विश्लेषण करते हुए सूचित किया कि 'वायुमार्ग से जाना, अदृश्य हो जाना तथा मनोनुकूल-शरीरों की प्राप्ति करना तथा तथाविध सभी सिद्धियाँ योग की मनोवैज्ञानिक शाखायें हैं, किन्तु सच्चा और कल्याणकारी योग तो अपने जीवन को पतन से उत्थान की ओर ले जाना है। अन्धकार से प्रकाश की ओर, दुराचरण से सदाचरण तथा स्वार्थपरता से विश्वकल्याण की ओर अपनी बौद्धिकता तथा कर्मपरायणता को जागृत करना ही योग है। भौतिकता, नास्तिकता, हिंसा, असत्यता, कामुकता, धूर्तता से विरत होकर पारमात्मिकता, ईश्वरीयता, अहिंसा, सदाचरण, इन्द्रिय-संयम तथा शीलपरायणता के मार्ग की ओर अपनी बुद्धि, अपने कर्म तथा अपनी वाणी को अभ्युदित करना ही योग है। योग यदि अपने अन्दर नहीं प्राप्त होता तो और कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकता।'

इस प्रकार 5 बजे तक उपस्थित महानुभावों ने स्वामी जी का व्याख्यान दत्त-चित्त होकर सुना। जिस योग को उन्होंने इन्द्रजाल के समान एक विज्ञान माना था; जिस योग की प्राप्ति करने के लिए अरण्यों में जाना ही उनका विचार था; उसी योग का सारगर्भित परन्तु सरल तथा समुचित-विश्लेषण समझते ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि यदि योग का मार्ग हमारे समीप ही है तो हम निश्चयत: उसको अपने दैनिक-जीवन में व्यवहृत करेंगे और अपने पूर्वजों तथा आचार्यों के सद्-उत्तराधिकार की सम्प्राप्ति कर अपने ऐहिक और आमुष्मिक-जीवनों तथा तद्गत-क्लेशों की इतिश्री कर देंगे।

*　　*　　*　　*

यह विजय-वैजयन्ती है, जो कल प्रात:काल गुजरात की भूमि पर लहरावेगी। भक्ति-समन्विता बम्बई की जनता ने जो अश्रुतपूर्व सहयोग दिया, हमारा सांस्कृतिक इतिहास उसका ऋणी रहेगा और उसकी पुनरुक्ति समय-समय पर करता रहेगा। भावी-भारत की जनता के समक्ष भारत के इस सिंहद्वार की विरुदावली गाई जाती रहेगी कि यहीं बीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में अवतार-पुरुष ने अपनी धर्मध्वजा को उत्तोलित कर, योग और ज्ञान, कर्म और भक्ति, आध्यात्मिकता और अद्वैतनिष्ठा की स्वरलहरी भारतान्तर द्वीपों के लिए जागृत की थी और इसकी रूपरेखा को अपने आध्यात्मिक-तत्त्वावधान में संवारा था तथा इसके अतीतकालीन गौरव को आदर्श और विमल बनाया, संस्कृत और सत्यानुविन्दित किया था। जब यह कथा समाप्त होगी तो उनके मुखों से स्वत: ही जय-जयकार की ध्वनि प्रोद्यत होगी...

'जय हो स्वामी शिवानन्द सरस्वती की!'

अतीत के झरोखे से

गीता का संदेश

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

माधव बाग में शाम के छः बजे सार्वजनिक कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। स्वामी शिवानन्दजी ने गीता पर यह संदेश दिया–

अमरत्व की संतानों! माधव बाग वह पावन स्थली हैं जहाँ भगवान सत्यनारायण विराजमान हैं, और जहाँ मंडलेश्वर विद्यानन्द जी ने भगवद् गीता पर लगातार प्रवचन दिये हैं। अब भी महामंडलेश्वर स्वामी महेश्वरानन्द जी रोज प्रवचन देते हैं। आप सबको गीता के विषय की भली-भाँति जानकारी है। गीता की शिक्षाएँ भी आपने आत्मसात् कर ली हैं।

श्रीमद् भगवद् गीता में सभी वेदों और उपनिषदों का सार है। यह ग्रंथ हर युग के लिये, हर प्रकार के व्यक्ति के लिए पूर्णतया उपयुक्त है। यह तुम्हारे दैनिक जीवन में व्यावहारिक पथ-प्रदर्शन कर अविद्या का निराकरण करती है और परम शान्ति एवं आनन्द की उच्चतम स्थिति दिलाती है। अगर तुम गीता के चंद श्लोकों को ही आत्मसात् कर लो, तो शाश्वत आनन्द और शान्ति की अनुभूति कर लोगे।

शाश्वत अजन्मा तत्त्व

अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो– अगर इस एक श्लोक के अर्थ को समझकर तुम इस पर ध्यान करो, तो अमरत्व की प्राप्ति कर सकते हो। तुम उस देहाध्यास से छुटकारा पा सकते हो जो अनादि अविद्या का परिणाम है। शरीर से लगाव ही हमारे जीवन के सारे दुःखों, परेशानियों और क्लेशों की जड़ है। अगर इस देहाध्यास को दूर कर हम विवेक और वैराग्य के माध्यम से सत्य पहचान लें तो स्वयं को जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त कर परम आत्मिक शान्ति का अनुभव कर पायेंगे। हम सिद्ध पुरुष, योगी और साधु बन जायेंगे, किसी अनजान भविष्य में नहीं, बल्कि अभी, इसी क्षण।

ईश्वर अजन्मा है। वह निर्विकार, अपरिवर्तनशील और अमर है। वास्तव में इस नश्वर जीव और संसार का कभी ब्रह्म से उद्गम नहीं हुआ। यह सिर्फ मन का भ्रम मात्र है। अगर अजर-अमर ब्रह्म यह नश्वर जगत् या जीवात्मा बन जाए, अगर अजन्मा जन्म ले ले तब तो ब्रह्म का अमरत्व समाप्त हो जायेगा! पारमार्थिक दृष्टि से देखा जाए तो तीनों कालों में जगत् का कोई अस्तित्व है ही नहीं।

भगवद् गीता के सिद्धांतों को अपने जीवन में उतारने में ईमानदारी से लग जाओ। भगवद् गीता में श्रीकृष्ण द्वारा दिए गए संदेश के अनुसार दिव्य जीवन

जीयो। अपने हृदय की तख्ती पर *अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुणः एव च, निर्ममो निरंहकारः स शांतिं अधिगच्छति* जैसे श्लोकों को लिख लो और उनपर निरंतर ध्यान करो। विश्वप्रेम, करुणा और क्षमा का भाव अपने आप तुम्हारे हृदय में आयेगा और तुम अहंकार एवं ममता से मुक्त हो जाओगे। माया तुम्हें अहंकार और ममता के भाव से ही दुनिया से बाँधे रखती है। अगर तुम विवेक और आत्म-विचार के द्वारा इन दोनों का अंत कर दोगे, तो इसी क्षण जीवन-मृत्यु के बंधन से मुक्ति पा लोगे।

माया से सावधान रहो

जीवन का लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार है, यह कभी मत भूलो। माया इतनी शक्तिशाली है कि यह अलग-अलग तरीके से तुम्हें बाँधना चाहेगी। तुम्हें पता है झूठ बोलना अच्छी बात नहीं, फिर भी तुम झूठ बोलते हो। आत्म-विश्लेषण करो और पता लगाओ कि वास्तव में ऐसा है कि नहीं। तुम्हें पता है स्वार्थी होना अच्छा नहीं, फिर भी तुम स्वार्थी हो। यह माया है।

श्मशान में किसी की अंत्येष्टि में भाग लेते समय तुम बहुत-से सत्संकल्प लेते हो—मैं सदाचारी जीवन बिताऊँगा, खूब जप और ध्यान करूँगा, दूसरों की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाऊँगा। लेकिन जैसे ही घर वापस जाते हो, सब भूल जाते हो। यह माया है।

कभी-कभी घर में किसी मतभेद के कारण पति-पत्नी एक-दूसरे से लड़ाई-झगड़ा करते हैं। पति अपनी पत्नी और सारी दुनिया का त्याग कर संन्यास लेना चाहता है। पर फिर पत्नी जरा-सा मुस्कुरा देती है और पति उससे जौंक की तरह चिपक जाता है! यह माया है। बेचारे भ्रमित जीव पर माया का प्रकोप कितना भारी है! पर भगवान ने गीता में आश्वासन दिया है कि अगर हम उनकी शरण में चले जाएँ तो वे बड़ी आसानी से हमें माया के पार लगा देंगे।

जप करो, कीर्तन गाओ। ज्ञानियों और साधुओं की संगत में रहो। सत्संग, संतोष, विचार और शान्ति—ये मोक्ष-द्वार के चार पहरेदार हैं। अगर तुमने एक से भी मित्रता कर ली तो वह बाकियों से भी मिला देगा। अगर शान्ति प्राप्त हो गई तो बाकी गुण भी अपने आप मिल जायेंगे। धीरे-धीरे तुम अपना लक्ष्य प्राप्त कर लोगे। इसलिये गीता में वर्णित सद्गुणों का विकास करो।

हमारा वास्तविक स्वरूप

गीता के तेरहवें अध्याय में ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन किया गया है—

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥

संसार के किसी भी ग्रंथ में तुम्हें ऐसी महान् शिक्षा नहीं मिलेगी। *न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः*—वहाँ न सूर्य चमकता है, न चन्द्र, न अग्नि। ब्रह्म ही बुद्धि, मन और इन्द्रियों को ज्योति प्रदान करता है। वह *मनसः मनः, प्राणस्य प्राणः, चक्षुशः चक्षुः* है। उस तक दृष्टि नहीं जाती पर उसी की शक्ति से आँख देख पाती है और कान सुन पाते हैं। बुद्धि और मन सिर्फ उसकी शक्ति से संचालित होते हैं। एक ही परमात्मा है जो सच्चिदानन्द-स्वरूप है। तुम्हें उसे प्राप्त करना चाहिये, तभी तुम जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और दुःख जैसी परेशानियों से ऊपर उठ पाओगे।

तुम्हें आत्मा के स्वरूप और स्वभाव का विश्लेषण करना चाहिये। हम अपने आपको इस शरीर के साथ इतना जोड़ते हैं, क्षुद्र अहंकारी मन से इतने प्रभावित हैं कि अपनी मूल दिव्य प्रकृति ही भूल गये हैं। इसी के फलस्वरूप हमारी दुर्गति होती है। जिस दिन हम अपना दिव्य स्वरूप जान लेंगे, हमारे सारे दु:खों का अंत हो जाएगा।

स्वप्न में शरीर की कोई अनुभूति नहीं रहती, वह बस एक लकड़ी के टुकड़े जैसा पड़ा रहता है। इससे यह संकेत मिलता है कि तुम भौतिक शरीर नहीं, उससे परे हो। गहरी नींद में तो मन भी निष्क्रिय हो जाता है। यह स्पष्ट रूप से बतलाता है कि तुम अपने मन से भी परे हो। तुम्हारी मूल प्रकृति शांति की है। गहरी नींद में तुम किस चीज का आनन्द लेते हो? शांति का। अगली सुबह तुम कहते हो, 'मैंने बड़ी शांतिपूर्ण नींद का आनन्द लिया।' जहाँ राग-द्वेष नहीं, जहाँ कोई विषय-वस्तु नहीं, ऐसी गहरी नींद की अवस्था में तुमने शान्ति का आनन्द लिया। वहाँ कोई होटल, क्लब या मनोरंजन के साधन नहीं, फिर भी तुम्हें सुख और शान्ति मिलती है। यह इस बात को प्रमाणित करता है कि तुम शान्ति, आनन्द और अद्वैतता के प्रतिरूप हो। यही तुम्हारी मूल-प्रकृति है। अगर तुम गहन साधना, ध्यान और ज्ञान से मन का विनाश कर दो तो जाग्रत अवस्था में भी शान्ति और आनन्द को प्राप्त कर लोगे। मन तो बस राग-द्वेषों, संकल्प-विकल्पों, वासनाओं और आदतों का संग्रह है। अगर तुम इन सब का निर्मूलन कर दो तो मन का स्वयमेव नाश हो जाएगा। तुम परमात्मा से एकाकार हो जाओगे और यही जीवन का लक्ष्य भी है।

मोक्ष का मार्ग

आत्म-साक्षात्कार के लक्ष्य को कभी मत भूलना। माया तुम्हें भ्रमित करने की कोशिश करती है कि यह जगत् ही सत्य है, इन्द्रिय भोग ही सच है और मन एवं इन्द्रियों से परे और कुछ भी नहीं। सतर्क रहो और मनोयोग से साधना करो। सत्संग, आत्म-विचार, जप, ध्यान और स्वाध्याय का आश्रय लो।

वेदांती मानते हैं कि मन के तीन दोष होते हैं—मल, विक्षेप और आवरण। नि:स्वार्थ सेवा से मल हटा दो। गरीबों की सेवा कर और अभावग्रस्तों को दान देकर राग-द्वेष, ईर्ष्या और घृणा जैसी मन की अशुद्धियों को मिटा दो। मन और हृदय के शुद्ध होने पर ही आत्मज्ञान का अवतरण होता है। इसके अलावा मन बन्दर की तरह उछल-कूद करता रहता है। उपासना, त्राटक एवं प्राणायाम द्वारा इसे स्थिर करो। *ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्, धारणासु च योग्यता मनसः*। सत्त्व पर रजस् और तमस् की परत होती है। प्राणायाम के अभ्यास से रजस् और तमस् का नाश करो। फिर तुम सत्त्व से परिपूर्ण हो जाओगे। तभी तुम आत्म-विचार का अभ्यास कर जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर सकोगे।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरंहकारः स शान्तिमधिगच्छति॥

इस श्लोक पर निरंतर विचार करो। वास्तविक सुख और शान्ति कहाँ है? धन-दौलत जमा करने में नहीं, यहाँ-वहाँ मिल-फैक्टरी बनाने में नहीं। याद रखो इस नश्वर जगत् में कुछ भी तुम्हें शाश्वत मानसिक शान्ति नहीं दे सकता। किसी करोड़पति से पूछ लो, 'क्या तुम्हारे पास मानसिक शान्ति है?' वह जरूर बोलेगा, 'नहीं।' *विहाय कामान्!* अपनी समस्त इच्छाओं को और ममता एवं अहंकार के सभी भावों को त्याग दो। तभी तुम्हें शान्ति मिलेगी। इसलिए यह श्लोक हमेशा याद रखो।

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

गुरु के शब्दों पर और स्वयं पर विश्वास रखो। अगर श्रद्धा होगी तो बाकी सब अपने आप आ जायेगा। यूँ तो तुम इतनी चीजों में विश्वास रखते हो, तुम्हें इस तथ्य पर भी पूर्ण श्रद्धा और अडिग विश्वास होना चाहिये– *एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा*– जैसे दूध में घी, लकड़ी में आग और माँ के गर्भ में भ्रूण निहित है, वैसे ही एक विशुद्ध चेतना हर जीव में छुपी है। आत्म-विचार, गीताध्ययन, अनुशासित जीवन, मिताहार, प्रेम, दया और करुणा द्वारा इस चेतना को पाकर तुम इसी क्षण जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर सकते हो।

गीता के तेरहवें और सोलहवें अध्याय में भगवान ने साहस, दानशीलता और अहिंसा जैसे अनेक सद्गुणों का वर्णन किया है। मैंने इन गुणों को एक छोटे-से गीत में पिरोया है।

तब स्वामी शिवानन्द जी ने अपना 'सॉन्ग ऑफ 18 इटीज़' गाकर सुनाया। इसके बाद भजन और कीर्तन का सिलसिला चला। तत्पश्चात् स्वामी शिवानन्द ही ने वहाँ मौजूद महिलाओं से सत्संग किया और उन्हें मदालसा और शची जैसी गौरवशाली नारियों के उदाहरण दिये। फिर उन्होंने महामृत्युंजय मंत्र का उच्चारण किया और समझाया कि यह मंत्र एक रक्षा कवच का काम करता है। साथ ही यह स्वस्थ, दीर्घ जीवन प्रदान करता है और साथ ही मोक्ष की प्राप्ति भी कराता है। अंत में स्वस्ति वाचन के साथ स्वामीजी ने अपनी वाणी को विराम दिया।

इस सत्संग से सभी श्रोता मंत्रमुग्ध हो गए थे। अब तक की यात्रा में यह सत्संग शायद सबसे जोरदार और प्रभावशाली रहा। प्रबुद्ध लोगों का कहना था कि चूंकि शिवानन्द जी स्वयं गीता के चलते-फिरते उदाहरण थे, इसलिए जब भी वे इस विषय पर अपने विचारों को अभिव्यक्त करते तो मानो साक्षात् गीता उनके मुख से गंगा समान प्रवाहित होने लगती।

मंत्र विज्ञान

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमारी भारतीय आध्यात्मिक परम्परा में शुरू से ही ध्यान का महत्त्व रहा है। लेकिन जब व्यक्ति ध्यान करता है, तब उस समय उसे क्या करना चाहिये? क्या मन को शून्य कर देना है या मन को किसी आधार पर टिकाना है? यह प्रश्न वैदिक काल से आज तक रहा है, और लोग अपने-अपने तरीके से इसका समाधान देने का प्रयास करते हैं। हमारे गुरुजी कहते थे कि आत्मानुभूति के दो तरीके होते हैं। एक अनुभूति होती है जब हम अपने मन को शून्य अवस्था में ले जाते हैं और दूसरी अनुभूति होती है जब हम शून्य से प्रकाश में आते हैं। शून्य में तो कुछ नहीं रहता जबकि प्रकाश में दिव्यता का अनुभव होता है। यह ध्यान का क्रम है।

जब समय-समय पर अलग-अलग शिक्षक हमारे समाज में आते हैं तो मनुष्य की मानसिकता के अनुसार वे कहते हैं कि तुम्हें यहाँ तक जाना है। उसको वे एक नक्शा देते हैं और कहते हैं कि यहाँ से तुम अपनी यात्रा शुरू करो और वहाँ पहुँचो। शून्यता की पद्धति और प्रकाश की पद्धति—हमारी आध्यात्मिक परम्परा में दोनों को मान्यता मिली है, लेकिन महत्त्व दिया गया है प्रकाश को, शून्य को नहीं। शून्य को मार्ग के एक पड़ाव के रूप में माना गया है। जैसे एक स्टेशन को पार करके हम दूसरे स्टेशन पर पहुँचते हैं, वैसे ही शून्य की स्थिति होती है। शून्य तो हुआ अधर में लटकना। क्या हम त्रिशंकु की तरह शून्य में लटकते रहेंगे या कहीं पर हमें पैर रखने का स्थान मिलेगा? यही अंतर है महात्मा बुद्ध और योग के दर्शन में। महात्मा बुद्ध कहते थे शून्यता को प्राप्त करो। शून्यता का मतलब होता है कर्मों, विचारों और सभी प्रकार के बाह्य प्रभावों का अभाव। यही विपश्यना का अभ्यास है—आंतरिक शून्यता, आंतरिक स्थिरता, आंतरिक मौन की अवस्था, जहाँ कोई मानसिक आवेग आपको प्रभावित नहीं करता।

लेकिन उसके आगे भी एक अवस्था होती है, जो है प्रकाश की और यहाँ तक पहुँचने के लिये हमें कुछ विधियों का सहारा लेना पड़ता है। योग में जो प्रत्याहार, धारणा आदि अंग आते हैं वे मन को तैयार करने की अवस्थाएँ हैं। पहली अवस्था है शून्यता, क्योंकि वहाँ पर कुछ कटना जरूरी है। जैसे एक किताब को पढ़ने के लिए पन्ने को पलटना पड़ता है, वैसे ही मन की भी बहुत सारी चीजें पीछे छूट जाती हैं और उनको फिर सामने लाने की आवश्यकता नहीं। वे आपके ऐसे विचार और संस्कार होते हैं जो एक्सपायर कर चुके हैं। यही शून्यता है। इसके बाद जब नयी विचारधारा उत्पन्न होती है तब हम जाते हैं शून्य से प्रकाश की ओर।

योगदर्शन में भी इस बात को कहा गया है कि वृत्तियों का निरोध करना है, उन्हें खत्म नहीं करना है। जब तक हमलोगों का यह जीवन है, हम वृत्तिशून्य नहीं हो सकते हैं। जो नकारात्मक है, उसे सकारात्मक से बदल सकते हैं, लेकिन अपने आपको खाली नहीं कर सकते। अगर खाली करेंगे तो इस जीवन का कोई प्रयोजन भी नहीं रहेगा। सब खत्म हो जायेगा। जब हम सामान्य पाँच वृत्तियों का निरोध करते हैं तब एक दूसरी वृत्ति का जन्म होता है जिसे कहते हैं ब्राह्मी वृत्ति। यह वृत्ति शरीर या इन्द्रियों पर केन्द्रित होने की बजाय दिव्यता पर केन्द्रित होती है। ब्राह्मी अवस्था में सत्त्व गुण की, सद्गुणों की प्रधानता होती है।

अजपाजप

जब आप वृत्तियों का निरोध कर देते हो तो नई वृत्ति को जन्म देने के लिये जो उपाय होते हैं, उनमें से एक है अजपाजप और सोऽहम्। वेदों और उपनिषदों में भी अजपाजप और सोऽहं मंत्र, इन दो साधनाओं पर विशेष जोर दिया गया है। लगता है कि वैदिक काल में अजपाजप और सोऽहं साधना हर व्यक्ति की प्राथमिक साधना थी, क्योंकि इसका इतना उल्लेख मिलता है। यहाँ तक कि हंस उपनिषद् नाम का एक उपनिषद् भी है, जिसमें श्वास की प्रक्रिया, एकाग्रता और सोऽहं मंत्र का उपयोग बतलाया गया है।

इसी चीज को कबीरदासजी ने भी आगे बढ़ाया। एक जगह वे अजपाजप और सोऽहं मंत्र के बारे में कहते हैं–

ऐसा जाप जपो मन लाई, सोऽहं सोऽहं सुरता गाई।
छः सौ सहस इक्कीसौ जाप, अनहद उपजै आपै आप॥

कबीरदास जी का कथन था कि ऐसा जप करो, अपने मन को श्वास के साथ ऐसा जोड़ दो कि तुम्हारे श्वास का जो स्वर है वह सोऽहं में बदल जाए। और जब तुम अपनी इस सोऽहं श्वास का ख्याल चौबीस घण्टे तक रख पाओगे, तब तुम्हें अनहद नाद की अनुभूति होगी।

जब हमारे गुरु, श्री स्वामी सत्यानन्द जी आश्रम से निवृत्त हुए थे और रिखिया आकर उच्च साधनाओं में संलग्न हुए थे तो उस समय आश्रम के द्वार पर लिखा रहता था, 'फिर मत आना।' बहुत-से लोग श्री स्वामीजी से पूछते थे, 'आप कहते हो कि फिर मत आना, क्यों? क्या हम लोग आपके सम्बन्ध से, दर्शन से वंचित हो जायेंगे?' वे कहते थे, 'नहीं, ऐसी बात नहीं। पहले समझो कि मैं यहाँ आया क्यों। मैं आया हूँ अपनी एकान्तिक साधना के लिये। अगर मुझे लोगों से मिलने-मिलाने का यही कर्म करना होता तो मैं मुँगेर को क्यों छोड़ता? उसमें मेरा तो कोई त्याग हुआ नहीं। मैं जिस जीवनपद्धति में प्रवेश कर रहा हूँ, उसमें मुझे अपनी सजगता अपने मंत्र में लगानी है। चौबीस घण्टे मंत्र का ख्याल करना है, स्मरण करना है। अगर तुम लोग आओगे तो चाहे दो मिनट हो या दस मिनट, मुझे तुमसे बात तो करनी होगी। तुम मेरी साधना में व्यवधान बनोगे। मेरी इच्छा है कि हर श्वास में अपने गुरु मंत्र का ख्याल करूँ। अगर मैं चौबीस घण्टे बिना किसी व्यवधान के ख्याल रख सकता हूँ, तो यह एक उपलब्धि होगी।'

अगर आपने उनकी कोई पुरानी वीडियो फिल्म देखी है तो उसमें आपने देखा होगा कि वे अपनी माला हाथ में लेकर चलाते रहते हैं। जब भी वे बैठते उनकी माला चलती रहती। पंचाग्नि में बैठे हैं, उनकी माला चल रही है। जब घूम रहे हैं तब भी उनके हाथ में माला चल रही है। मतलब हर क्षण उनकी सजगता मंत्र और श्वास में रहती थी। अपने साधना काल में उन्होंने अजपा को पूर्णतया सिद्ध किया।

अजपा की सिद्धि होती है मंत्र के चौबीस घण्टे निरंतर स्मरण से। निद्रा की अवस्था में भी मंत्र अवचेतन में चलता रहता है। ऐसा वाकई होता है। इसकी एक झलक हमें मिली जब हमने पंचाग्नि साधना की। हो सकता है आपको भी कभी इसका अनुभव हुआ होगा। बहुत बार रात को जब नींद खुलती है तब लगता है कि हम स्वप्न में मंत्र का ही जप कर रहे थे। वह तो एक भावना है पर यहाँ पर हकीकत में होता है और उस अवस्था में मन एकदम शान्त होता है।

मंत्रों का धार्मिक और आध्यात्मिक स्वरूप

रही बात सोऽहं के मतलब की तो देखिए, ऋषियों ने इन मंत्रों को ध्यान की अवस्था में अनुभव किया है। ये किसी तर्क या तकनीक के आधार पर बनाए गए शब्द या वाक्य नहीं हैं। अगर आप तर्क खोजियेगा तो नहीं मिलेगा। एक उदाहरण देता हूँ। मंत्र है ॐ नम: शिवाय। अब इसका अगर हिन्दी में अनुवाद करें तो क्या होगा? मैं शिवजी को प्रणाम करता हूँ। अगर आप केवल हिन्दी में कहते रहें कि 'मैं शिवजी को प्रणाम करता हूँ, मैं शिवजी को प्रणाम करता हूँ,' तो वह मंत्र नहीं होगा, क्योंकि मंत्र के हर एक अक्षर का स्पंदन होता है जो हमारे सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करता है। जब हम ध्यान की अवस्था में मंत्र बोलते हैं तो हमारा मन उस मंत्र में लगा रहता है, उस मंत्र के स्पन्दन से जुड़ा रहता है। मन में ॐ बोलते हैं तो ॐ का अपने आप आज्ञा चक्र में स्पन्दन होता है। इसी तरह 'न म: शि वा य', ये जो पाँच अक्षर हैं, इनका अलग-अलग चक्रों के साथ सम्बन्ध होता है।

जनसाधारण के लिए मंत्र कैसे सर्वसुलभ बनाए जाएँ? इस बारे में योगीजन दो विचारधाराओं को लेकर चले हैं। जो भक्त किस्म के लोग थे, जिनकी धर्म-कर्म में आस्था थी और जो धर्म एवं अध्यात्म में अंतर को नहीं देख पाते थे, उन लोगों से योगियों ने कहा कि जो मंत्र तुम बोलते हो, चाहे ॐ नमो भगवते वासुदेवाय बोलो, चाहे ॐ नम: शिवाय बोलो, चाहे ॐ दुं दुर्गायै बोलो, वह तुम्हारे आराध्य को नमस्कार है, आवाहन है। धार्मिक लोगों को ज्यादा खोपड़ी चलानी नहीं थी, वे तो मात्र श्रद्धा पर चलते हैं कि हम अपने आराध्य को कैसे प्रसन्न करें ताकि उनका आशीर्वाद प्राप्त हो जाए। अगर लड्डू चढ़ाकर उन्हें प्रसन्न कर सकते हैं तो लड्डू चढ़ाओ। अगर मंत्र बोलकर प्रसन्न कर सकते हैं तो मंत्र बोलो। अगर तुम भाव से करोगे तो आराध्य का दर्शन भी सम्भव हो पायेगा। और ऐसा हुआ भी। जिन लोगों ने तन्मयता से अपने आपको मंत्र के साथ जोड़ा, उन्हें दर्शन भी हुए।

इसके विपरीत कुछ लोग ऐसे भी थे जो धर्म में विश्वास नहीं करते थे और अपने जीवन में आध्यात्मिक गुणों को लाना चाहते थे। उन लोगों को योगियों ने मंत्र का सही प्रयोजन समझाते हुए कहा, 'देखो मंत्र का अर्थ है– *मननात् त्रायते इति मंत्र:*। मंत्र तुम्हें अनावश्यक मनन से मुक्त करता है और मन नकारात्मकता की बजाय सकारात्मकता की ओर उन्मुख होता है। मंत्रों का असर तुम्हारी सूक्ष्म ग्रंथियों, सूक्ष्म चक्रों पर पड़ता है और इससे तुम्हारे भीतर की ऊर्जा को जागृत किया जाता है।' इस तरह योगियों ने मंत्रों के दोनों पक्षों को उजागर किया। धार्मिक प्रवृत्ति वालों के लिये अपने आराध्य के प्रति श्रद्धा और आध्यात्मिक प्रवृत्ति वालों के लिए सूक्ष्म शरीर के प्रति सजगता।

सोऽहं मंत्र और ईश्वर से भावनात्मक सम्बन्ध

हमारे गुरुजी कहते थे कि सोऽहं मंत्र श्वास का अपना स्पन्दन है। अगर इस मंत्र का हिन्दी में अनुवाद करें तो मतलब होता है, 'मैं वह हूँ'। स्वाभाविक रूप से मन में श्रद्धा की भावना जगती है कि मैं और मेरे आराध्य एक हैं। धार्मिक दृष्टि से यह व्याख्या अच्छी ही है।

अब अगर आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखा जाए कि मैं हूँ कौन, तो क्या मैं यह इन्द्रिय-समूह हूँ, क्या मैं यह शरीर हूँ, क्या मैं मन हूँ, क्या मैं बुद्धि हूँ? मतलब आपका वास्तविक परिचय क्या है? अगर हम समाज में किसी से यह प्रश्न पूछते हैं तो वह अपना नाम और पद बताता है। पर यह तो मात्र सामाजिक परिचय है। अपने वास्तविक परिचय का आभास हमें कब होगा?

हमारे गुरुजी कहते थे कि भूल जाओ तुम शरीर या इन्द्रियाँ हो, क्योंकि वास्तव में तुम वह नहीं हो। यह भी भूल जाओ कि तुम आत्मा हो, क्योंकि उसका अनुभव तुमने नहीं किया है। अभी वह केवल एक कल्पना है। तब लोग कहते थे कि स्वामीजी, अगर मैं भूल जाऊँगा कि मैं शरीर नहीं हूँ, आत्मा नहीं हूँ तो मैं हूँ कौन। श्री स्वामीजी कहते थे कि तुम इस भाव को अपने मन में रखो कि तुम जीवन की एक क्वालिटी, एक गुण हो और उसे अपने जीवन में दृढ़ बनाओ। वही गुण या भाव तुम्हारी आत्मा और परमात्मा के बीच एक सम्बन्ध को स्थापित करता है।

श्री स्वामीजी कहते थे कि जब तक मैंने योग के लिये कार्य किया, तब तक मैंने अपने को जानने के लिये बहुत माथा-पच्ची की। ध्यान किया, चक्र जगाए, कुण्डलिनी जगाई, सब कुछ किया लेकिन फिर भी मुझे तृप्ति नहीं मिली। सब तो जग गये लेकिन सम्बन्ध नहीं बना। उसके लिये क्या करना है? गुरुजी कहते थे कि उसके लिये अपने सम्बन्ध को निश्चित करो। सोचो कि तुम उनके प्रेमी हो और उस भाव से उनसे जुड़ो। जब प्रेम होता है तब द्वैत नहीं होता, एकता का अनुभव होता है। या फिर सोचो कि तुम उनके सेवक हो और उस भाव से ईश्वर को प्राप्त करने का प्रयास करो। मतलब पहले ईश्वर के साथ अपने रिश्ते को निश्चित कर लो

और फिर उस सम्बन्ध को बढ़ाओ। उस सम्बन्ध को जब तुम बढ़ाते हो तब अन्ततः वह तुम्हें ईश्वर से जोड़ता है।

श्री स्वामीजी कहते थे कि मैंने तो अपना सम्बन्ध निश्चित कर लिया है। वे मेरे मालिक हैं, मैं उनका सेवक हूँ। अब फिलॉसफी में तो आदमी कुछ भी कह सकता है, लेकिन जब श्री स्वामीजी जैसा एक सिद्ध व्यक्ति अपने आपको एक सम्बन्ध से जोड़ता है और उस सम्बन्ध के माध्यम से उस परमतत्त्व को प्राप्त करता है तो यह हमलोगों के लिये एक संकेत है कि हम भी इस तरीके से एक सम्बन्ध की स्थापना करके ईश्वर का साक्षात्कार कर सकते हैं। केवल मन की तिकड़म से नहीं, बल्कि एक सम्बन्ध को स्थापित करके। यही ध्यान का रहस्य है।

आप ध्यान करते हो, मंत्र जप करते हो, विचारों को देखते हो, श्वास के साथ मंत्र करते हो, तरह-तरह के अभ्यास करते हो, लेकिन सबको करते-करते अभी तक मन उस दिव्य भाव से जुड़ा नहीं है। केवल चक्र से जुड़ा है, कुण्डलिनी से जुड़ा है। उस दिव्य भाव से जुड़ने के लिये सम्बन्ध निश्चित करो, ऐसा हमारे गुरुजी हमेशा कहते थे।

यह सब आपको इसलिए बतला रहे हैं ताकि आपको स्पष्ट हो कि मंत्र की पहुँच कहाँ तक है और मंत्र के साथ मनुष्य की भावना का क्या सम्बन्ध होता है। जब हम कहते हैं कि अपने सम्बन्ध को निश्चित करो तो यह भावनात्मक सम्बन्ध हुआ न! हमारी आध्यात्मिक परम्परा में अनेक प्रकार के सम्बन्धों की चर्चा की गई है और उसके दृष्टांत भी हैं। एक सम्बन्ध होता है मित्र या सखा का, जैसे कृष्ण जी और सुदामा जी। ऐसा सम्बन्ध कि जब मित्र के जीवन में आवश्यकता पड़ी तो भगवान उसे सब कुछ देने के लिये तैयार हो जाते हैं। तीसरी मुट्ठी को रुक्मिणी जी ने रोक दिया था न! वरना कृष्णजी तो सब कुछ देने को तैयार थे। मित्रता के सम्बन्ध में भी समर्पण और बलिदान होता है।

एक और सम्बन्ध है प्रेम का, जैसे राधा और कृष्ण। इसमें भी समर्पण और बलिदान, दोनों हैं। फिर है वैरभाव का सम्बन्ध जैसे रावण और राम या कंस और कृष्ण का। कंस तो अपनी मृत्यु की भविष्यवाणी के कारण एकदम भयभीत रहता था। रात को वह काँपते हुए उठता था कि कोई मुझे मार रहा है। उसका वैर भाव सतत् मन में कृष्ण का ख्याल बनाए रखता था। वह हर जगह, हर व्यक्ति में उसी को देखता था कि कहीं यह तो नहीं है। शत्रुता में वह सब जगह कृष्ण को ही देखता है। रावण का भी वही हाल था।

इस प्रकार से हमारी आध्यात्मिक परम्परा में अलग-अलग भावों का वर्णन आया है। भाव व्यक्ति को ईश्वर से जोड़ने का सेतु है, और जब भावनाओं का पुल बन जाता है तब आप संसार सागर आसानी से पार कर पाते हैं। यही मंत्र का प्रयोजन है।

–14 अप्रैल 2014, चेम्बुर, मुम्बई

भक्ति का मार्ग

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

27 अक्टूबर, 1950–स्वामी शिवानन्द जी ने आस्तिक समाज में आयोजित सार्वजनिक सभा में भक्ति योग पर अपने विचार प्रस्तुत किए–

मैं आपकी प्रेम भरी सद्भावना से अभिभूत हूँ। मुझे यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि इतने सारे लोगों की भीड़ ने बड़ी शांति से मेरा इन्तजार किया। पिछले दो महीनों से मैं रोज किसी नई जगह जाकर विभिन्न वर्गों के लोगों को संबोधित करता हूँ। कई बार तो मुझे कार्यक्रम की जानकारी भी नहीं होती, मुझे पता ही नहीं होता कि कहाँ पर हूँ और किस भाषा में बात की जाए!

जब मैं आपकी श्रद्धा और भक्ति देखता हूँ, आपके भावपूर्ण कीर्तन-भजन सुनता हूँ तो ऐसा लगता है यह माटूँगा नहीं, ऋषिकेश है। आस्तिक समाज और शंकर मठ जैसी संस्थाओं ने यहाँ का वातावरण बड़ा ही सात्त्विक बना दिया है। ये संस्थाएँ अद्भुत कार्य कर रही हैं। बड़े शहरों में, जहाँ की संस्कृति भौतिकता से भर गई है, इस तरह की संस्थाएँ वरदान हैं।

देखा जाए तो भौतिकता की तामसिक शक्तियाँ भी ईश्वर की अनुमति से ही पनपती हैं। ईश्वर स्वयं अपना प्रकाश और सामर्थ्य दैवी शक्तियों को प्रदान कर, आसुरी शक्तियों की पराजय करवाते हैं। इन आसुरी शक्तियों का अस्तित्व ही इसलिए है कि ईश्वर एवं उनकी दैवी शक्तियों की महिमा बढ़े, जीवात्माएँ नकारात्मक शक्तियों से संघर्ष कर शीघ्र प्रगति करें। ईश्वर स्वयं ही रोगी, रोग, वैद्य और दवा का रूप लेते हैं। ऐसी है उनकी दिव्य लीला।

स्वामी शिवानन्द जी ने फिर महामंत्र का कीर्तन कर इसकी महिमा का बखान किया।

नवधा भक्ति

भगवान का कीर्तन करना उनके प्रति नवधा भक्ति की एक विधा है। पहला है श्रवण अर्थात् उनकी लीलाओं को सुनना। फिर है कीर्तन, यानि उनके नाम, गुणों और लीलाओं का गान। इसके बाद है स्मरण यानि ईश्वर की निरंतर स्मृति। फिर है पादसेवन, अर्थात् उनके चरण कमलों की आराधना। फिर है अर्चन यानि ईश्वर के अर्चावतारों की पूजा, और तत्पश्चात् वंदन, उनके चरणों में नमन। फिर आते हैं तीन परम भाव। पहला है दास्य भाव, दूसरा है सख्य भाव, और फिर अंत में परम प्रेम के साथ उनके प्रति पूर्ण समर्पण कर देना, अर्थात् आत्म-निवेदन।

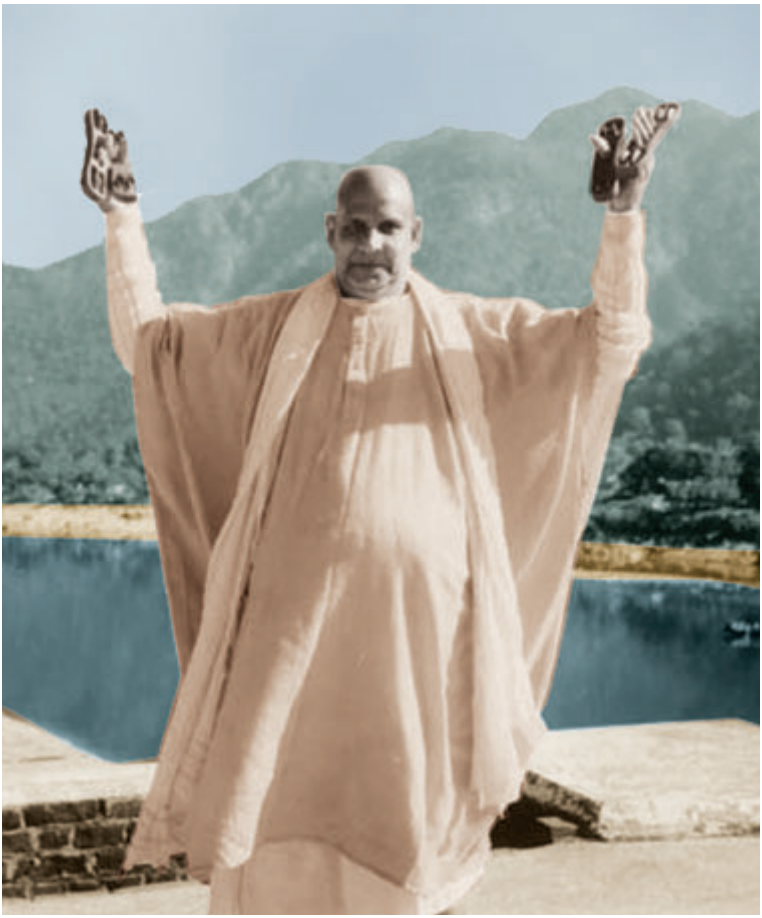

यह आत्म-निवेदन या पूर्ण-समर्पण भक्ति की उच्चतम अवस्था है। यह ज्ञानयोग या राजयोग की समाधि जैसी ही स्थिति है। यह वही परमस्थिति है जिसे कर्मयोगी भी प्राप्त करने के लिए तत्पर रहते हैं। गीता में इस अवस्था का बड़ा सुन्दर वर्णन है। स्वामी शिवानन्द जी ने तब महामंत्र की धुन पर इस श्लोक का गायन किया–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यमि मा शुचः॥

यहाँ पर भगवान जोर देकर घोषणा करते हैं कि अगर तुम स्वयं को उनके प्रति समर्पित कर दोगे, तो वे सारे पापों से तुम्हें मुक्त कर देंगे। उनका सबसे बड़ा आश्वासन है– *मा शुचः*, शोक मत करो, डरो मत।

निष्पाप स्थिति की प्राप्ति

परमात्मा तक पहुँचने के मार्ग में आगे बढ़ती जीवात्मा से हुई गलतियों को ही पाप कहते हैं। संसार और पाप एक-दूसरे से जुड़े हैं। उस परम निष्पाप स्थिति को प्राप्त करने के लिये तुम्हें सारे सांसारिक प्रपंचों से उठकर अज्ञान के परे जाना होगा। वह निष्पाप अवस्था प्रभु के चरण-कमलों में ही मिल सकती है। इसलिये पाप सम्बन्धी सभी कुण्ठित करने वाले विचारों का त्याग दो और बस भगवान की शरण में चले जाओ।

विषय-सम्बन्धी अनुभव इन्द्रियों के धर्म हैं। भूख और प्यास प्राण के धर्म हैं। विचार और चित्तवृत्तियाँ मन के धर्म हैं। विवेक बुद्धि का धर्म है। इन सभी धर्मों से जब आसक्ति हो जाती है तब मनुष्य बंध जाता है और पाप से जुड़ जाता है। मूल रूप से तुम सच्चिदानन्द ब्रह्म हो, जो इन सभी धर्मों, प्रकृति की सभी लीलाओं और अविद्या के अंधकार से परे है। इन सभी धर्मों को छोड़कर परमात्मा में लीन हो जाओ, तब कोई पाप तुम्हें कलंकित नहीं कर सकता। तुम शाश्वत शांति, आनन्द और अमरत्व प्राप्त करोगे।

भक्त चिंतामुक्त होता है

जो भक्त अच्छे-बुरे की अवधारणाओं से ऊपर उठकर ईश्वर के प्रति समर्पण कर देता है, वह सुख-दु:ख के भी परे चला जाता है। फिर उसके सारे कर्म ईश्वर-इच्छा अनुसार होते हैं। उसे जो कुछ भी मिलता है, वह उसे ईश्वर का आशीर्वाद समझ कर ग्रहण करता है।

कुछ भ्रमित लोग ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण की आड़ में जो जी में आए वही करते हैं, लेकिन जब उन्हें दु:खदायी और कष्टप्रद अनुभव होते हैं तो वे बुरी तरह हिल जाते हैं। चोरी करके वे कहेंगे, 'मैंने कुछ नहीं किया, यह तो भगवान की मर्जी थी।' लेकिन जब उनकी जमकर पिटाई होगी तो वे चिल्ला-चिल्लाकर रोएँगे, उसे भगवान की मर्जी नहीं समझेंगे। यह पूर्ण समर्पण नहीं, बल्कि मनमानी करने का बहाना है!

नैतिकता तो भगवद्-भक्त का सहज स्वभाव बन जाती है। वह किसी सामाजिक नियम से बंधा नहीं होता, पर फिर भी उसका व्यवहार शुद्ध, निष्कलंक और उदात्त होता है। वह ईश्वर के सभी कल्याण-गुणों को स्वयं धारण करता है। वह जय-पराजय, निन्दा-प्रशंसा और सुख-दु:ख जैसे सभी द्वन्द्वात्मक अनुभवों को भगवान की ही कृपा समझ कर, उनके स्मरण और उनकी सेवा में लीन रहता है। मैं आशा करता हूँ ऐसे पूर्ण समर्पण से तुम सभी ईश्वर को इसी जन्म में प्राप्त कर लो।

स्वयं को जानो और दिव्यता को पाओ

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

'स्वयं को जानो और दिव्यता को पाओ'—यह कोई दार्शनिक या सैद्धान्तिक विषय नहीं, बल्कि इसी विषय को हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानन्द जी ने जाना एवं आत्मसात् किया और यही शिक्षा उन्होंने अपने शिष्यों के माध्यम से मानवता को प्रदान की। यह एक लक्ष्य है जीवन का और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये योग एक माध्यम बनता है।

योग के क्रम में साधना की शुरुआत होती है हठयोग से और हठयोग के द्वारा जब हम शारीरिक स्वास्थ्य, शुद्धता, पवित्रता और संतुलन को प्राप्त कर लेते हैं तब फिर इस स्वस्थ शरीर के माध्यम से हम अपने मन को संयमित करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार हठयोग के बाद प्रवेश होता है राजयोग में। राजयोग की शुरुआत होती है यम तथा नियम से। ये मानसिक व्यवहारों को सुव्यवस्थित करने के तरीके हैं। उसके बाद आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान के अभ्यासों द्वारा अपने तनावों को दूर करके, अपनी मानसिकता को परिवर्तित करके, अपनी प्रतिभाओं को आत्मसात् करके हम पुन: संसार में, कर्म में संलग्न होते हैं। जब राजयोग सिद्ध हो जाता है तब हम योग के तीसरे क्रम में प्रवेश करते हैं और वह है कर्मयोग। कर्मयोग में स्वामी शिवानन्द जी की आठ विचारधाराओं का समावेश होता है, जिसे हम कहते हैं शिवानन्द जी का अष्टांग योग।

कर्म हम लोगों के जीवन का आधार है। जब तक हम अपने लिये कर्म करते हैं तब तक उसका स्वरूप कर्म ही रहता है, लेकिन जब हम वही कर्म दूसरों के उत्थान के लिये करते हैं, तब वह कर्म नहीं, सेवा कहलाता है। कर्मों में कोई परिवर्तन नहीं होता, बस उनकी अभिव्यक्ति में परिवर्तन होता है। अगर हम अपने लिये कर रहे हैं तो यह कर्म है और उस कर्म से बन्धन की उत्पत्ति होती है। लेकिन वही कर्म जब दूसरों के उत्थान के लिये किया जाता है, उस कर्म में बन्धन नहीं, मुक्ति है।

हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानन्द जी का यह चिन्तन था कि अध्यात्म की उच्च अवस्था प्राप्त करके भी मनुष्य अपने आपको कभी कर्म से विमुख नहीं कर सकता। किसी संत या सिद्ध को भी जीवन निर्वाह के लिये कर्म का आश्रय लेना ही पड़ता है। कर्म से मुक्ति कभी होती नहीं। मृत्युपर्यन्त मनुष्य के शरीर, मन, इन्द्रियों और भावनाओं द्वारा सतत् कर्म होते रहता है। लेकिन कर्म से जुड़ी मानसिकता बदल जाती है। जो मानसिकता पहले सकाम और स्वार्थयुक्त थी, वही मानसिकता अब निष्काम और नि:स्वार्थ हो जाती है। इस प्रकार का जब कर्म होता है तब उसमें मानवीय गुण भी जुड़ने लगते हैं।

स्वामी शिवानन्द जी का कहना था कि जब तुम अपने शरीर और मन को व्यवस्थित करने के बाद कर्म करते हो तब तुम्हारे कर्म सेवा का रूप लेते हैं और तब उस कर्म से प्रेम स्वत: जुड़ता है। बिना प्रेम या संवदेनशीलता के नि:स्वार्थ कर्म करना सम्भव नहीं है। प्रेम के अभाव में अपनापन कभी नहीं आता और जब तक किसी के साथ अपनापन नहीं आता तब तक मनुष्य के कर्म हमेशा सकाम रहते हैं। तो कर्म का एक रूप हुआ सेवा और दूसरा हुआ प्रेम।

कर्म का तीसरा रूप है बलिदान, जिसमें हम अपने आपको दूसरे के प्रति समर्पित करते हैं। माँ अपने बेटे के लिये हर प्रकार का बलिदान देने के लिये तैयार होती है, क्योंकि अपनत्व और प्रेम की भावना है। अगर आप में प्रेम की भावना नहीं है, तो आपके सामने एक भिखारी भूख से तड़पते हुए मर जाए तो आप कहोगे कि वह अपने कर्म भुगत रहा है। लेकिन ऐसे शब्द अपनी संतान के लिये आपकी जिह्वा पर कभी नहीं आयेंगे। दूसरों के लिये आप कह देते हो कि वह कर्मों को भुगत रहा है, लेकिन अपनों के लिये कभी उस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते। जिस दिन आप अपनों वाले सिद्धान्त को दूसरों पर लागू करोगे, उस दिन से आपके जीवन में खुशहाली आ जायेगी। बलिदान की भावना से प्रेरित होकर फिर देने की प्रक्रिया आरम्भ होती है।

स्वामी शिवानन्द जी मानते थे कि कर्म के आठ आधार हैं। सेवा एक आधार है, प्रेम दूसरा आधार है, बलिदान और दान तीसरा आधार है। इन तीनों की पूर्णता पर आत्मीयता और पवित्रता का जो भाव मन में जागृत होता है, वह आपके हृदय

और मन के पूर्वाग्रहों को दूर करके आपको पवित्र बनाता है। जब आपके मन के पूर्वाग्रह समाप्त होते हैं तब आप अच्छे बनते हो, और जब आप अच्छे बनते हो तब आपके सभी व्यवहार अच्छे होते हैं। एक बार जब जीवन में अच्छाई आ जाती है तब फिर मनुष्य सच्चा ध्यान करता है और उस ध्यान के माध्यम से उस परमात्मा को प्राप्त करता है, जो हमारे जीवन का आधार है।

ये आठ स्तर ही कर्मयोग के मूल सिद्धान्त हैं। दर्शन के रूप में गीता, योगवासिष्ठ और उपनिषदों में भी कर्मसिद्धान्त को समझाया गया है, लेकिन व्यावहारिकता के संदर्भ में हम कर्म को कैसे समझ पाएँ और इसका सदुपयोग कैसे करें, इसकी शिक्षा हमारे परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी ने दी है।

स्वान (SWAN) **सिद्धान्त**

हठयोग, राजयोग और कर्मयोग–यह योग का एक क्रम हुआ। कर्मयोग में जब हम दूसरों के साथ संलग्न हो रहे हैं तब उसके साथ-साथ अपनी मानसिक प्रवृत्ति को परिवर्तित करने का भी प्रयास होना चहिए। मानसिक वृत्ति को परिवर्तित कैसे किया जाए? एक सरल तरीका बतलाते हैं। चार कागज ले लो। एक कागज पर अपने सामर्थ्यों, शक्तियों और प्रतिभाओं का उल्लेख करो। आपके जीवन के सामर्थ्य क्या हैं? संकल्प शक्ति, मानसिक स्पष्टता, प्रेम, करुणा, संवेदनशीलता, व्यवस्थित बुद्धि, व्यवस्थित भावना। हो सकता है इनमें से कुछ हो, कुछ न हो, लेकिन एक सूची तो बन सकती है। जो भी सूची बनाओ, अपना सही परीक्षण करके बनाओ।

दूसरे कागज पर अपनी कमजोरियों, भयों और कुण्ठाओं को लिखो। मन के दो पक्ष होते हैं, एक पक्ष में सामर्थ्य है और दूसरे में कमजोरी। मनुष्य अपने जीवन में विचलित इसलिये होता है कि उसने अपने जीवन की कमजोरियों को जाना है, लेकिन जब व्यक्ति अपने सामर्थ्यों को जानता है तब कमजोरियों से कभी विचलित नहीं होता।

एक उदाहरण देते हैं। वानर सेना के साथ हनुमान जी समुद्र किनारे खड़े हैं। उन्हें मालूम है कि समुद्र पार करना है। कोई कहता है कि मैं पचास योजन तक छलाँग मार सकता हूँ। कोई कहता है मैं जा सकता हूँ, पर आना पक्का नहीं है। मतलब हर कोई अपने सामर्थ्य और कमजोरी का आकलन कर रहा है। इस वानर समूह में एक ऐसे भी थे जो अपने आपको पूर्ण रूप से सामर्थ्यहीन मानते थे और वे थे हनुमान।

हनुमान जी ने कभी नहीं कहा कि मैं एक योजन या दस योजन या हजार योजन कूद सकता हूँ। उनको तो अपने सामर्थ्य की जानकारी थी ही नहीं। वे चुपचाप बैठे थे कि पता नहीं मैं दस गज भी कूद पाऊँगा या नहीं। उन्हें अपनी शक्ति का कोई आभास नहीं था। उस समय हनुमान जी के गुरु उनके सामने आते हैं।

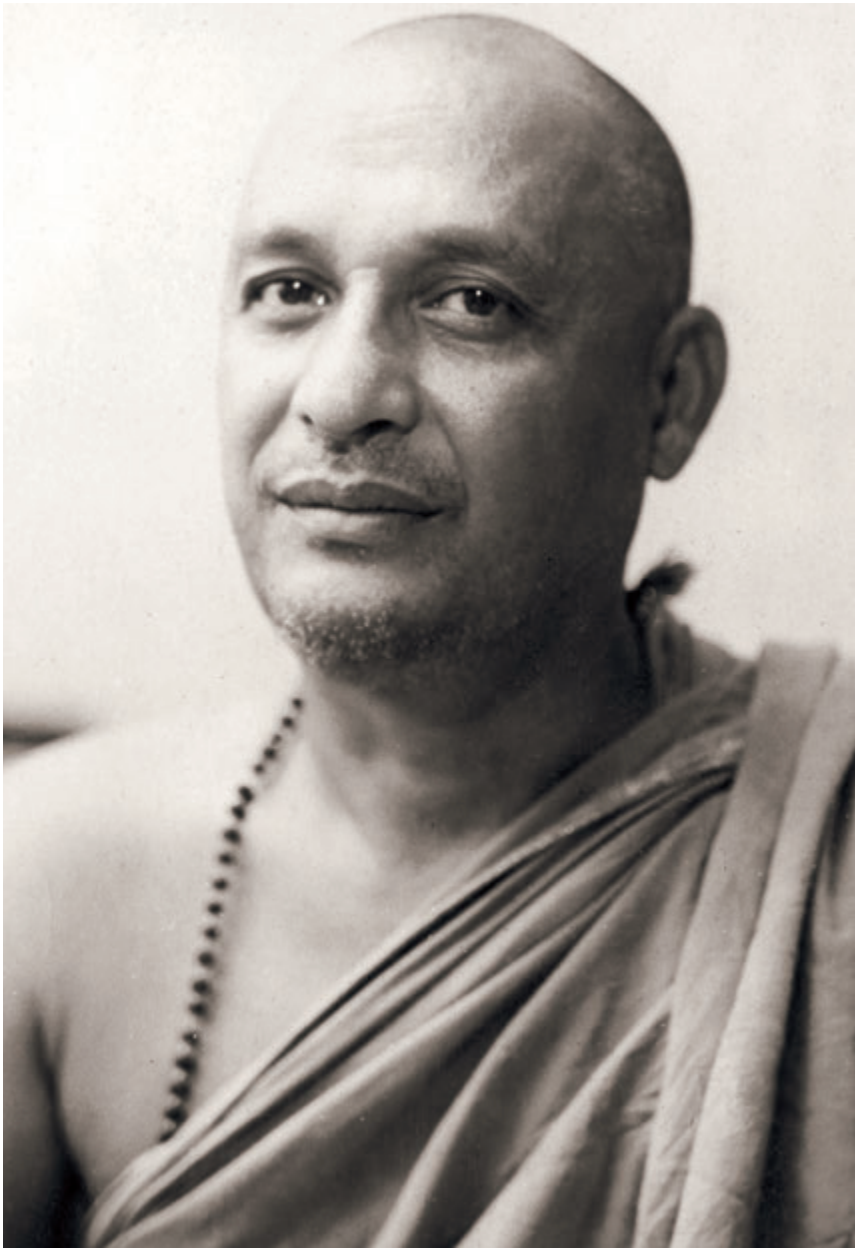

YOGA AND

स्वयम् को जानो योगोत्सव 2014 मुम्बई
पूज्य गुरुदेव अनन्तविभूषित श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वतीजी के श्री चरणोंमें समर्पित है।
Know Yourself Yogotsav 2014 Mumbai
presence of Swami Niranjanananda Saraswati,
Vishwa Yogapeeth, Munger, Bihar.
RGF Ground, Near Jawahar School, Opp Ashish
Jointly organised by Rashtriya Chemicals and Fertilizers Ltd., Dnyana Sadhana Trust,
Yoga Sadhana Kendra Chembur, Satyanand Yogadarshan Peeth Tryambakeshwar, Nasik
and Citizens of Mumbai

GOD BLESS YOU

स्वयम् को जानो योगोत्सव 2014
पूज्य गुरुदेव अनन्तविभूषित श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वतीजी
Know Yourself Yogotsav 20
In the auspicious
Swami Niranjanananda Sa
Vishwa Yogapeeth, Munger, Bihar.
th - 15th Apr
Ground, Near Jawahar School, O

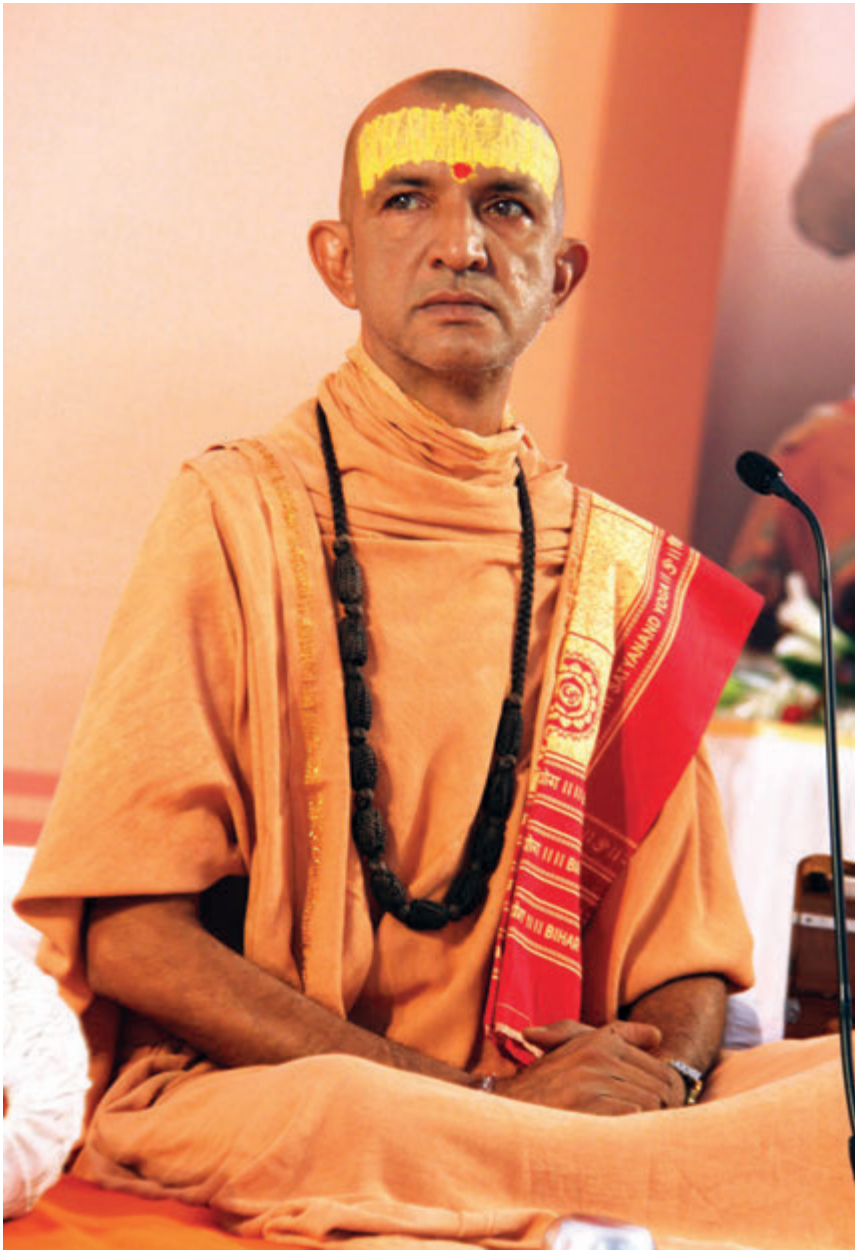

भगवान और गुरु दो अलग-अलग चीजें हैं। हनुमान जी के भगवान कौन थे? श्रीराम। लेकिन श्रीराम ने हनुमान जी से यह नहीं कहा कि बेटा, तुम सौ योजन कूद सकते हो। राम जी ने केवल एक विश्वास दिया। कैसा विश्वास? अपनी उँगली से मुद्रिका निकालकर हुनमान जी को यह कहकर दे दी कि जब तुम सीता जी से मिलोगे तो यह मुद्रिका उन्हें दे देना। इससे यह स्पष्ट होता है कि हममें वह क्षमता है कि जहाँ पर भी सीता जी हों, हम उन्हें खोज सकते हैं, क्योंकि भगवान ने हम पर यह विश्वास किया है। लेकिन फिर भी हनुमान जी समुद्र के किनारे चुप बैठे हैं।

तब आते हैं गुरु, जाम्बवन्त। कहते हैं, 'हनुमान तुम चुप क्यों बैठे हो? सबसे शक्तिशाली तो तुम हो, पर श्राप के कारण तुम अपनी शक्ति भूल गये हो। पहले तुमने शक्ति का दुरुपयोग किया था, इसलिये ऋषियों ने श्राप दिया कि तुम्हें अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं रहेगा।' जब शक्ति का सदुपयोग करवाना होता है, उस समय गुरु आकर कहते हैं कि देखो, तुम्हारे भीतर जो शक्ति है, उसे अगर तुम विध्वंस के कार्य में लगाओगे तो अपनी शक्ति का निरादर करते हो और वह शक्ति तुम्हें त्याग देगी। लेकिन जब उसी शक्ति का तुम सदुपयोग करोगे तो शक्ति का सामर्थ्य और बढ़ेगा।

गुरु जब आकर बतलाते हैं कि तुम्हारे भीतर यह शक्ति है तो शिष्य का कर्त्तव्य होता है उस शक्ति को पहचानना और उस शक्ति का सदुपयोग करना। यह नहीं कि गुरु से बहस करना कि आपको कैसे मालूम मेरे अंदर शक्ति है। या फिर हम लोग गुरु से पूछने लगेंगे कि बतलाइये क्या शक्ति है, हम लोग कैसे उसका उपयोग करें। मतलब हमलोगों के अन्दर उतावलापन आ जाता है कि अरे, मेरे पास ऐसी

चीज है। इससे केवल अहंकार बढ़ता है। लेकिन हनुमान जी में अहंकार नहीं है। वे चुपचाप सुनते हैं, आत्मसात् करते हैं और बिना कोई प्रश्न किए सीधा विशाल रूप धारण करके आसमान में छलाँग लगाते हैं। शक्ति की पहचान, यही कार्य गुरु करते हैं शिष्यों के साथ। गुरु जानते हैं कि एक बार तुम शक्ति को आत्मसात् कर लोगे तो तुम्हारे जीवन के सभी दोष समाप्त हो जायेंगे।

स्वामी शिवानन्द जी यही बात बतलाते हैं। तुम्हारे जो सामर्थ्य हैं, तुम्हारी जो कमजोरियाँ हैं, उन्हें देखो, जानो और समझो। एक कमजोरी को पकड़ो और उसे सामर्थ्य में बदलने का प्रयास करो। एक सामर्थ्य को पकड़ो और उसे बेहतर करने का प्रयास करो। अगर एक-एक महीने हम एक कमजोरी को हटाएँ और एक शक्ति को बढ़ाएँ तो सोच लो कि हम बारह महीनों में अपने मन को किस प्रकार बना सकते हैं। बारह महीनों में हम बारह कमजोरियों को खत्म कर सकते हैं और बारह सामर्थ्यों को प्राप्त कर सकते हैं। नहीं तो चालीस साल से योग किए जा रहे हो, ध्यान कर रहे हो पर इन नियमों का पालन किया नहीं और इसलिए आज तक कुछ हुआ नहीं। हमारे पास लोग आते हैं, कहते हैं कि हम बीस साल से ध्यान कर रहे हैं, लेकिन अभी तक हम अपने मन को नियंत्रित नहीं कर पाए। अभी भी हमारे मन में आक्रोश है, द्वेष है, घृणा है और अभी भी हम अपनी मनोस्थिति को संभाल नहीं पाते हैं। ऐसा क्यों हो रहा है? ध्यान भी कर रहे हैं और कोई बदलाव भी नहीं हो रहा है।

ऐसा इसलिए कि ध्यान के लक्ष्य को हमने सुरक्षित नहीं रखा है। कोई कहता है कि ध्यान करोगे तो ज्योति दिखलाई देगी और हमारा ध्यान अपने व्यक्तित्व से हटकर ज्योति की तरफ चले जाता है। एक काल्पनिक चीज में हम अपने आपको भूल जाते हैं। अरे! ज्योति देखने के लिये ध्यान करने की आवश्यकता नहीं, केवल माचिस और मोमबत्ती की आवश्यकता है। ध्यान की आवश्यकता होती है अपने जीवन के विकारों को दूर करने के लिये। एक बार जब विकार दूर हो जाते हैं तब ज्योतिर्मय अस्तित्व का स्वत: आभास होने लगता है।

इसी प्रकार अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को तीसरे पन्ने पर नोट करो और फिर विचार करो कि क्या व्यावहारिक है और क्या अव्यावहारिक, क्या प्राप्य है और क्या अप्राप्य। जो चीजें प्राप्य हैं, उन्हें प्राप्त करने के लिए कौन-से आवश्यक कदम उठाने हैं, यह निर्णय लेना है और जो अप्राप्य महत्त्वाकांक्षाएँ हैं उन्हें त्यागना है, क्योंकि वे केवल आपके मन को विचलित करेंगी, आपके सामर्थ्यों को बाँध देंगी, और जो प्राप्य है उसे भी आप प्राप्त नहीं कर पाओगे। जिस प्रकार से महत्त्वाकांक्षाओं की सूची बनती है, उसी प्रकार से अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की भी एक सूची बना लो। इस तरह सामर्थ्य, कमजोरियाँ, महत्त्वाकांक्षाएँ और आवश्यकताएँ—ये चार चीजें हैं, जिनका पहले विश्लेषण करो।

जीवन में सद्गुणों को लाना

मन की वृत्ति और व्यवहार हमेशा तमस् से प्रभावित होता है। तामसिक गुण सहज रूप से मन में प्रकट होते हैं, जबकि सद्गुणों को लाने के लिये प्रयास करना पड़ता है। लोग हमारे पास आते हैं, कहते हैं कि स्वामीजी, भक्ति कैसे करें, अपने जीवन में प्रेम को कैसे बढ़ायें, किस प्रकार करुणा भाव को ला सकता हूँ, किस प्रकार संवेदनशील बन सकता हूँ, तरीका बताइये। जब लोग हमसे इस प्रकार के प्रश्न पूछते हैं तो हम उनसे एक ही चीज कहते हैं, 'आपने कहीं सीखा कि घृणा, क्रोध या ईर्ष्या कैसे करना?' ये तुम्हारे जीवन की सहज अभिव्यक्तियाँ हैं। इन्हें सीखने के लिये किसी गुरु या शिक्षक के पास जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। जैसे-जैसे तुम बड़े हुए वैसे-वैसे ये भी आपके साथ बड़े हुए हैं, क्योंकि ये आपके जीवन-साथी हैं।

हमारे ये जो जीवन साथी हैं, इनमें पहली कतार होती है तामसिक गुणों की। उसके बाद दूसरी कतार होती है राजसिक गुणों की और तीसरी कतार होती है सात्त्विक गुणों की। आप देख रहे हैं तीनों कतारों को, लेकिन सामने हैं आपके तामसिक मित्र। अगर आप सात्त्विक मित्रों तक जाना चाहेंगे तो आपको पहली और दूसरी कतार को पार करना होगा, उसके बाद तीसरी कतार में जाकर आप अपने सत्त्वगुणयुक्त मित्रों से मिल पायेंगे। यह एक तरीका हुआ कि हमने पहली लाइन को पार किया, दूसरी लाइन को पार किया और तीसरी लाइन में गये अपने मित्रों के बीच।

दूसरा तरीका है कि पीछे वाली कतार के मित्रों को कह दिया कि तुम्हीं सामने आ जाओ। वे रजोगुण की कतार को पार करते हैं, तमोगुण की कतार को पार करते हैं और अब सामने की कतार में आ जाते हैं। ये दो तरीके हैं—या तो हम वहाँ जायें या उस अवस्था को यहाँ पर ले आयें। यही अध्यात्म की शिक्षा है।

योगाभ्यास और योग साधना

पहले तो तुमने योगाभ्यास किया। आसन किये, प्राणायाम किये, षट्कर्म किये—यह सब अभ्यास के अंतर्गत आता है। लेकिन जब तुम अपने जीवन, मानसिकता, चरित्र और आदतों में परिवर्तन को लाने का प्रयास करते हो, तो उस समय योगाभ्यास नहीं, योग साधना होती है, क्योंकि साधना के बल पर ही हम उस ऊर्जा को जाग्रत करते हैं, जिसके सहारे हम तमोगुण और रजोगुण की लाइन को पार कर पाते हैं। यह है सत्त्वगुण की ऊर्जा।

गुरु की जो शिक्षा होती है, वह हमेशा सत्त्व की शिक्षा होती है। इसलिये जब तक गुरु के साथ रहते हो, तब तक सत्त्व के वातावरण में रहते हो और तुम्हें आनन्द आता है। लेकिन जब गुरु से दूर होते हो, पुनः संसार में जाते हो तब कहते हो कि जब तक आपके साथ रहा तब तक बड़ा सुख मिला, लेकिन जब आपका

साथ छोड़ा तो फिर उसी संसार में पड़ गया। इसका मतलब कि तुम केवल गुरु के शारीरिक सान्निध्य को देख रहे हो। लेकिन गुरु की यह इच्छा है कि तुम्हारे भीतर वह सामर्थ्य आये कि तुम अकेले ही संसार का सामना कर सको और अकेले ही संसार में अपने लिए एक सुखद वातावरण का निर्माण कर सको।

गुरु के सान्निध्य से दूर होकर हम पुन: अपने घर, परिवार और उसी तामसिक सामाजिक वातावरण से अपने आपको घिरा पाते हैं। हमारा कोई मित्र, हमारा कोई सगा-सम्बन्धी, हमारा कोई पड़ोसी हमारा अहित चाहता है। हम चिंता करते हैं, द्वेष करते हैं, झगड़ा करते हैं, संघर्ष करते हैं, अशान्ति हो जाती है, अतृप्ति हो जाती है। जीवन में कभी सफलता मिलती है तो कभी असफलता। हम एकदम भ्रमित हो जाते हैं कि यह क्यों हो रहा है। जिसको हम आज तक अपना मानते थे, आज वही हमारे विरोध में खड़ा हो गया। आज तक हमें सफलता मिल रही थी, अब हमें असफलता मिल रही है। आज तक लोग हमें सम्मान दे रहे थे, अब हमारा अनादर कर रहे हैं। इन्हीं सब भावनाओं से घिरकर मनुष्य मृत्यु को प्राप्त करता है।

अध्यात्म का उद्देश्य है अपने जीवन में अपनी क्षमता और सामर्थ्य को इतना बढ़ाना कि हम जहाँ भी रहें, चाहे तमस् की अवस्था में ही क्यों न रहें, हमारे भीतर सत्त्व की अवस्था जाग्रत हो। यही साधना का उद्देश्य है, और इस साधना में, जो हठयोग, राजयोग और कर्मयोग के बाद आरम्भ होती है, व्यक्तित्व की फाइन-ट्यूनिंग होती है।

शरीर अकेले जन्म नहीं लेता है, उसके साथ जीवन के दोष और गुण, दोनों जन्म लेते हैं और शरीर के साथ ही बढ़ते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, घृणा और

द्वेष जैसे दोष शरीर और मन के साथ बढ़ते हैं। इनकी प्रबलता इतनी हो जाती है कि इनके सामने अच्छाई दुर्बल दिखाई देने लगती है। लेकिन अगर अच्छाई से तुम अपना संबंध जोड़ लोगे, तो बुराई अपने आप दुर्बल हो जाएगी।

यही योग का सिद्धान्त है, जिसे हम कहते हैं प्रतिपक्ष भावना। एक नकारात्मक अवस्था को सकारात्मक सामर्थ्य में परिवर्तित करो। जो दोष है उसे प्रतिभा में परिवर्तित करो। स्वान साधना के द्वारा अपने सामर्थ्यों, कमजोरियों, महत्त्वाकांक्षाओं और आवश्यकताओं का विश्लेषण करो। कर्मों में दोषों को देखकर उन्हें दूर करना, यही कला है योग साधना की। योगाभ्यास तो एक क्रिया है, लेकिन साधना एक सूक्ष्म प्रक्रिया है। ध्यान अभ्यास है लेकिन ध्यान में जब मन परिवर्तित हो जाए, वही ध्यान का अभ्यास अब साधना में बदल जाता है। जब तक अभ्यास करते हो, परिवर्तन नहीं होता, लेकिन एक बार परिवर्तन हो जाए और तुम उस परिवर्तन से तादात्म्य स्थापित कर लो, तब फिर वह अभ्यास नहीं रहता, बल्कि जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हो जाती है। इसी स्वाभाविक अभिव्यक्ति को कहते हैं साधना।

साधना का मतलब होता है जिसको हमने साध लिया, जिसमें हमने पूर्णता को प्राप्त किया। हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानन्द जी ने बार-बार साधना के इसी पक्ष पर जोर दिया है। वे कहते हैं कि कुछ ऐसी नकारात्मक वृत्तियाँ और व्यवहार हैं, जिनसे तुम अपने आपको अलग करो, और कुछ ऐसे गुण हैं, जिन्हें तुम अपने जीवन में लाने का प्रयास करो, उसी से तुम अमरत्व को प्राप्त करोगे। मनुष्य का सम्बन्ध ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, दम्भ और अहंकार जैसे संसार के दुर्गुणों से बनता है, और वही मनुष्य को मारता भी है। लेकिन जब हम अपने मानसिक व्यवहारों और वृत्तियों को पहचान लेते हैं और उनके निराकरण के लिये, उनके शमन के लिये प्रयास करते हैं, तो फिर हम एक ऐसी अवस्था में आते हैं जहाँ हमें आत्मा की अनुभूति होने लगती है।

भक्ति योग

एक बार जब हमें आत्मा की अनुभूति होने लगती है, तब कर्म को छोड़कर हम प्रवेश करते हैं भक्ति मार्ग में। भक्ति योग भावना या इमोशन की अभिव्यक्ति है। हमारे गुरु जी बताते हैं कि इमोशन का मतलब हुआ 'एनर्जी इन मोशन', यानि ऊर्जा का प्रवाह। हमारी ऊर्जा सामान्य रूप से बाहर की ओर प्रवाहित होती है। क्रोध, भय, प्रेम–ये सब ऊर्जा के प्रवाह हैं जो पूरे व्यक्तित्व पर अपने आपको आरोपित कर देते हैं। जब तुम क्रोध की अवस्था में होते हो तो क्रोध केवल मानसिक नहीं होता। उस समय शरीर भी उस क्रोध से प्रभावित हो जाता है। आँखें लाल हो जाती हैं, शरीर काँपने लगता है, तंत्रिका तंत्र प्रभावित हो जाता है, श्वसन तंत्र पर असर पड़ता है, हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। इस तरह से एक भाव पूरे व्यक्तित्व पर अपने आपको आरोपित कर देता है, पूरे जीवन को रंग देता है।

बचपन में हमने एक कहानी सुनी थी कि जब राम जी अयोध्या लौट आए और राजा बन गए तब एक दिन अपने सभी भाइयों के साथ बैठकर उन्हें बतला रहे थे कि लंका में क्या-क्या हुआ। इसी क्रम में उन्होंने हनुमान जी से कहा कि तुम अशोक वाटिका का वर्णन करो जहाँ पर सीता जी को कैद किया गया था। वहाँ किस प्रकार के फूल, फल और पेड़ थे, हमारे भाइयों को बताओ।

हनुमान जी कहते हैं कि भगवन्! अशोक वाटिका में जो पेड़ थे, उन सभी में लाल रंग के फूल थे। तुरंत सीता जी कहती हैं कि हनुमान, तुम गलत बोल रहे हो। अशोक वाटिका में अनेक पेड़ थे, जिनमें हर रंग के फूल दिखलाई देते थे। हनुमान जी कहते हैं, 'नहीं माता, आप गलत बोल रही हैं, मैंने तो वहाँ पर केवल लाल रंग के फूलों को देखा।' सीता जी कहती हैं, 'बेटा हनुमान, मैं वहाँ पर रही हूँ। मुझे मालूम है कि वहाँ पर हर प्रकार के फूल खिले थे।' अब दोनों में हो गई बहस। राम जी चुपचाप सुन रहे थे। तब हनुमान जी राम जी से कहते हैं कि भगवन्, अब आप ही हम दोनों के बीच मध्यस्थता कीजिये।

राम जी कहते हैं, 'मैं कैसे मध्यस्थता कर सकता हूँ, मैंने तो लंका में प्रवेश किया ही नहीं। लेकिन मैं तुम्हारी बात भी मानता हूँ और सीता की भी।' हनुमान जी ने पूछा कि आप कैसे दोनों की बात मान सकते हैं। तब राम जी ने कहा, 'सीता की बात मानता हूँ क्योंकि वह वहाँ रही थी और एक साल तक उसने उस उद्यान को देखा है। अगर वह कहती है कि उस उद्यान में हर प्रकार के फूल थे तो वह सत्य है।' तब हनुमान जी कहते हैं कि भगवन् इसका मतलब कि मैं गलत हुआ। रामजी कहते हैं, 'नहीं, तुम गलत नहीं थे। जब तुम लंका गये थे तब तुम्हारी आँखें क्रोध से लाल थीं। इसलिये तुम्हें सब जगह लाल फूल ही दिखे!'

अगर तुम लाल रंग का चश्मा पहनोगे तो सारा संसार लाल ही दिखलाई देगा। नीले रंग का चश्मा पहनोगे तो संसार नीला ही दिखलाई देगा, और अगर चश्मा निकाल दोगे तो संसार का जो वास्तविक रूप-रंग है वह दिखलाई देगा। जब क्रोध की स्थिति आती है तब उस समय मनुष्य पर क्रोध का रंग चढ़ जाता है और उसकी बुद्धि का नाश होता है। गीता में कहा गया है–

संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः॥
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।

क्रोध बुद्धि को भ्रमित और सम्मोहित कर देती है। एक बार जब बुद्धि और विवेक समाप्त हो जाता है, तब मनुष्य की स्थिति एक मरे हुए व्यक्ति की तरह हो जाती है। यहाँ पर बात हो रही थी उन मानसिक वृत्तियों और व्यवहारों की जो अपने आपको व्यक्तित्व पर आरोपित कर देते हैं। उन्हीं से मुक्त होना योग का लक्ष्य है

ताकि हम पुन: मानसिक निर्मलता और स्पष्टता को प्राप्त करें और हमारे मन और इन्द्रियों में संयम आए। इसी संयम के द्वारा फिर हम अपने जीवन का निर्माण कर सकते हैं। यहीं से भक्तियोग का आरम्भ होता है।

भावनाओं का स्वरूप

हमारे गुरुजी बतलाते थे कि भावना का अपना कोई रंग नहीं होता। स्फटिक पत्थर का अपना कोई रंग नहीं होता, वह पारदर्शी होता है, लेकिन जब स्फटिक को किसी रंगीले वस्त्र पर रखते हैं, तो वही रंग स्फटिक में दिखलाई देता है। उसी तरह भावना का अपना कोई रूप-रंग नहीं होता, लेकिन विषयों के संपर्क में आकर भावना विषय के रंग को ग्रहण कर सांसारिक बन जाती है। और जब भावना विषयों के रंगों को ग्रहण नहीं करती, शुद्ध रहती है, तब वही भावना भक्ति कहलाती है।

सड़क पर पैसे के बण्डल को देखते हो तो मन में लोभ होता है। अभी तक मन में लोभ नहीं था, लेकिन जब बण्डल को देखा तो उसके साथ मन का एक सम्पर्क, एक सम्बन्ध बना। पहचान हुई कि उस बण्डल में पैसा है। लोभ का रंग अब मन में आ गया। हमारा प्रतिद्वन्द्वी हमारे सामने खड़ा है। हम दोनों एक ही व्यवसाय में हैं। ईर्ष्या होती है कि वह मेरे से ज्यादा सफल है। प्रतिद्वन्द्वी से मन का सम्पर्क हुआ और मन ने ईर्ष्या का रंग ग्रहण किया। प्रेमी को देखते तो मन प्रेम का रंग ग्रहण करता है और उस अनुरूप मन का व्यवहार होता है। संतान को देखते हो तो स्नेह

की भावना प्रकट होती है। इस प्रकार संसार के विषयों से जैसा सम्बन्ध बनता है, उसी प्रकार की भावना तुम अपने भीतर प्रकट करते हो।

जब तक इन्द्रियों का सम्बन्ध बाहरी विषयों के साथ है, तब तक भावनाएँ भी बाहर प्रवाहित होती हैं। लेकिन जब तुम संसार के विषयों से भावनाओं के सम्बन्धों को काट देते हो तब उसी भावना को भक्ति के रूप में अनुभव करते हो, क्योंकि वह जुड़ गई आपकी अन्तरात्मा, आपके आराध्य और इष्ट के साथ।

कर्मों के माध्यम से जब हम अपने जीवन के दुर्गुणों को दूर करते हुए सेवा, प्रेम, बलिदान, शुद्धता और अच्छाई को प्राप्त करते हैं, तब जाकर भक्ति सिद्ध होती है। नहीं तो भक्ति स्वार्थपूर्ण रहती है। जब भक्ति सिद्ध होती है तब मनुष्य के जीवन में कोई कामना शेष नहीं रहती क्योंकि वह अपने आपको ईश्वर की ऊर्जा की एक अभिव्यक्ति मानता है। जब तुम्हें यह आभास हो जाए कि मैं और मेरे ईश्वर, दोनों में कोई दूरी नहीं है तब वह भक्ति की अन्तिम पराकाष्ठा है। उसमें फिर क्या साधना करना, कौन-सा मंत्र जपना, कौन-सा भजन-कीर्तन करना? वह तो एक आन्तरिक सम्बन्ध को स्थापित कर देता है जो कभी टूटता नहीं।

मानव जीवन का लक्ष्य

योग के क्रम में हठयोग, राजयोग और कर्मयोग के बाद चौथा है भक्तियोग, जहाँ फिर सब भेद समाप्त हो जाते हैं। हमारे गुरुजी एक दृष्टांत देते थे कि नमक की एक गुड़िया समुद्र की गहराई को जानने के लिये समुद्र में डुबकी लगाती है और उस समुद्र के पानी में इतनी घुलमिल जाती है कि अपने अस्तित्व को ही खो देती है। उसी तरह मनुष्य नमक है और परमात्मा पानी। जब तुम पानी में डुबकी लगाओगे तो नमक घुल जायेगा, लेकिन जब तुम पानी को सुखा दोगे, तो नमक फिर से वापिस आ जायेगा। इसी प्रकार से जब तुम अपने आपको भूलकर परमात्मा में रम जाते हो तो तुम्हारा अस्तित्व समाप्त हो जाता है, लेकिन जब तुम्हारे जीवन से परमात्मा विलीन हो जाते हैं, तब तुम पुन: अपने अस्तित्व, अपने अहंकार से नाता जोड़ते हो।

जीवन में ऐसी स्थितियाँ आती है और मनुष्य इन स्थितियों को समझ नहीं पाता है। योग कहता है कि जीवन में विचित्र-विचित्र परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, लेकिन तुम्हारा काम है कि अपने उद्देश्य, लक्ष्य और प्रयोजन को हमेशा स्पष्ट रखो। स्वामी सत्यानन्द जी कहते हैं कि मनुष्य जीवन का लक्ष्य है आध्यात्मिक चेतना की जागृति। इसी से शांति की प्राप्ति सम्भव है। अपने सामर्थ्यों एवं सीमाओं के प्रति सजग होना और अपने आप को सुधारने का प्रयास करना ही वह आध्यात्मिक सजगता है जिसे हमें प्राप्त करना है। जब इस पथ पर तुम आगे बढ़ते हो तब तुम्हें दिव्यता का अनुभव होने लगता है। यही बात हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानन्द जी भी कहते थे। उन्होंने अपने आश्रम की स्थापना 'भारतीय योग संस्थान' या 'विश्व

योग संस्थान' के नाम से नहीं की। उनके आश्रम की स्थापना हुई 'दिव्य जीवन संघ' के नाम से। 'स्वयं को जानो' का मूलमंत्र भी उन्हीं के द्वारा दिया गया है, लेकिन बहुत ही व्यावहारिक तरीके से।

अध्यात्म मार्ग है, ध्यान मार्ग है, लेकिन इस मार्ग पर जो यात्रा करता है वह है हमारा मन, और इस मन रूपी गाड़ी का जो ड्राइवर है वे हैं हम। अध्यात्म है सड़क, मन है गाड़ी, मन के ड्राइवर हैं हम और जीवन में उत्तमता की प्राप्ति है लक्ष्य। उसी उत्तमता में फिर ईश्वरत्व की दिव्य अनुभूति होती है। ईश्वरत्व की जो दिव्य अनुभूति है वह अपने आप को ही पहचानना और पाना है। गीता में कहा गया है, *ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः*—मेरा ही अंश जीव रूप में इस संसार में प्रकट होता है। पानी चाहे सागर में हो या एक बूँद में, है तो पानी ही। हम हैं बूँद और परमात्मा है सागर। जब एक साधु कहता है कि तुम भी उसी परमात्मा के अंश हो, तो तुम्हें सागर की ओर नहीं देखना है, बल्कि अपनी ही ओर देखना है और जानना है कि मैं जिस पानी की बूँद हूँ, उसी का व्यापक रूप है परमात्मा।

जीवन में मनुष्य अपने ईश्वर से कभी दूर नहीं होता है। वही गुणवत्ता, वही ऊर्जा उसके भीतर हमेशा विद्यमान रहती है। लेकिन हम अपने भीतर की इस बूँद को नहीं देख पाते हैं और सागर को देखने का प्रयास करते हैं। योग कहता है कि सागर तो हजारों मील दूर है, उसे कैसे देख पाओगे। तुम्हारे भीतर में वही तत्त्व है, उसको पहचान लो तो तुम्हें आभास हो जायेगा कि तुम उसी सागर की एक छोटी-सी बूँद हो। वही तुम्हारे लिये ज्ञान की अवस्था है, वही तुम्हारे लिये परमात्मा से साक्षात्कार है।

इस प्रकार हठयोग, राजयोग और शिवानन्दजी के अष्टांग योग से गुजरते हुए योग का क्रम अंत में भक्तियोग में आकर समाप्त होता है। इसकी व्यावहारिकता को अगर हम अपने जीवन में अपना सकें तो निश्चित रूप से कृष्ण जी ने अर्जुन को जो आदेश दिया था, *तस्मात् योगी भवार्जुन,* उसे हम आत्मसात् कर सकते हैं और अर्जुन की तरह योगी बन सकते हैं। गीता के अंत में संजय धृतराष्ट्र से कहते हैं—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

जहाँ पर कृष्ण हैं, जहाँ पर धनुर्धारी अर्जुन हैं, वहाँ पर श्री है, वहाँ पर विजय है और वहाँ पर विभूति है। हम अर्जुन हैं और हमारे भीतर बैठा हुआ ईश्वर हमारा गुरु है, हमारा कृष्ण है। अगर हम अपने इस गुरु की बात को स्वीकार कर लें, तब फिर निश्चित रूप से हमें भी विजय, विभूति और श्री की प्राप्ति इस जीवन में होगी और यही योग का संदेश है।

—15 अप्रैल 2014, चेम्बुर, मुम्बई

योग साधना

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

28 अक्टूबर, 1950–स्वामी शिवानन्द जी ब्लावात्स्की लॉज नामक आध्यात्मिक संस्था पहुँचे जहाँ के अध्यक्ष और कार्यकारिणी के अन्य सदस्यों ने उनका स्वागत किया। स्वामीजी ने ओम् कीर्तन के पश्चात् अपना संदेश इस प्रकार दिया–

यह आध्यात्मिक केन्द्र बहुत अच्छा कार्य कर रहा है। मैं इससे कई सालों से जुड़ा हूँ। मैं आशा करता हूँ कि बम्बई की जनता केन्द्र के कार्यकर्त्ताओं को पूर्ण सहयोग देगी ताकि यह न केवल भारत में, बल्कि सम्पूर्ण विश्व में एक बेहतरीन आध्यात्मिक संस्था के रूप में उभरे।

आज दुनिया को ऐसे ही आध्यात्मिक केन्द्रों की जरूरत है। जब आप अकेले ध्यान के लिए बैठते हैं तो शुरू के कुछ मिनट तो अभ्यास बड़ी गम्भीरता से करते हैं, पर फिर निद्रा की स्थिति बनने लगती है। अगर निद्रा नहीं तो तन्द्रा और आलस्य हावी हो जाते हैं। पर इन आध्यात्मिक केन्द्रों में कराई जाने वाली सामूहिक प्रार्थना या ध्यान में सब लोग मिलकर प्रबल आध्यात्मिक तरंगें उत्पन्न करते हैं। हर साधक को उसके पड़ोसियों की तरंगों से मदद मिलती है और वह ध्यान का गहनता से अभ्यास कर पाता है।

माया अनेक तरीकों से अपना काम करती है। आसुरी शक्तियाँ मनुष्य पर हर दिशा से आक्रमण करती हैं। लेकिन साथ ही ईश्वर बड़े कृपालु हैं। वे ही ऐसी संस्थाओं को बनाकर दिव्य शक्तियों को बढ़ाने में और योग का संदेश फैलाने में मदद करते हैं।

योग ईश्वर से मिलन है। कोई भी साधना या विधि जो आपका मन स्थिर कर उसे परमात्मा में लगाने में मदद करे वही योग है। इसे प्राप्त करने के विविध तरीके हैं। व्यक्ति की प्रकृति और स्वभाव के अनुसार तरीके भी अलग होते हैं। जो व्यक्ति भावपूर्ण हो उसे अपना तानपुरा उठाकर कीर्तन-भजन गाने चाहिये। मन संगीत के प्रति आसानी से आकर्षित होता है। कुछ साधक शब्द उपासना और लय योग करके समाधि प्राप्त कर लेते हैं। ग्रंथों में तो योग की सिर्फ चार-पाँच शाखाओं का ही उल्लेख है, पर वास्तव में योग की करोड़ों शाखाएँ हैं। सब का लक्ष्य एक ही है।

माया जाल

तुम तत्त्व रूप से परम पुरुष हो, प्रकृति की सारी गतिविधियों के मूक साक्षी हो। रहस्यमयी अविद्या के कारण तुम्हें लगता है कि तुम इस प्रकृति से जुड़े हो और इसके विषयों से सुख का भोग करते हो। ऐसे में अद्वैत भाव नहीं रहता और 'मैं',

'तुम' एवं 'वह' के विचार उठते हैं। यह अस्मिता है। पुरुष की चेतना अब मन और बुद्धि के माध्यम से बाहर प्रकृति की ओर बहने लगती है।

अहंकार का जागरण होता है जो एक-दूसरे में भेद करता है और अब बुद्धि को अनुभव सुखदायी या दु:खदायी दिखने लगते हैं। इससे राग और द्वेष पैदा होते हैं जो तुम्हारे अलग अस्तित्व को और प्रबल करते हैं। तुम स्वयं को एक पृथक् जीव के रूप में देखकर जीवन से चिपक जाते हो। यह अभिनिवेश है। यही दु:ख परम्परा है। यह मायाजाल तब तक कायम रहता है जब तक तुम प्रकृति की इस लीला से छुटकारा नहीं पा लेते। इन्द्रिय अनुभव मन में वृत्ति का रूप ले लेते हैं। जब इन वृत्तियों का निरोध होता है तब जिस पाश से पुरुष और प्रकृति आपस में बंधे हैं, वह टूट जाता है और पुरुष अपनी स्वतंत्रता की अनुभूति कर कैवल्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

हर योग का लक्ष्य एक है

राजयोग में मोक्ष को प्राप्त करने के लिए आठ अंगों का उल्लेख है। सबसे पहले आते हैं यम और नियम, जो रास्ता तैयार करते हैं। फिर आसन और प्राणायाम जीवन के सत्य की अनुभूति कराते हैं। *ततो द्वन्द्वानभिघात:*—तुम द्वन्द्वों से ऊपर उठ जाते हो, स्वार्थपरक जीवन से चिपके नहीं रहते। अभिनिवेश का जड़ से नाश हो जाता है। प्रत्याहार और धारणा तुम्हें राग-द्वेष से मुक्त कराते हैं। ध्यान अस्मिता को मिटा देता है। फिर अंत में निर्विकल्प समाधि में अविद्या का पर्दा पूरी तरह हट जाता है और तुम्हें कैवल्य की प्राप्ति होती है।

ज्ञानयोग के अनुसार मल, अर्थात् मन की अशुद्धियों, विक्षेप अर्थात् मन की चंचलता और आवरण अर्थात् अविद्या का पर्दा हटने से जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह सब राजयोग में भी सिद्ध होता है। यम और नियम मन की शुद्धि करते हैं। आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार मन को स्थिर और एकाग्र करते हैं। धारणा, ध्यान और समाधि अविद्या का नाश कर मोक्ष की ओर ले जाते हैं।

साधना की प्राथमिक आवश्यकताएँ

सभी यौगिक पद्धतियाँ यह मानती हैं कि साधक के लिये प्रथम आवश्यकता वैराग्य है। उसे विषय-भोग से मुँह मोड़ना होगा। इच्छाओं का नाश करना होगा क्योंकि इच्छाएँ ही निम्न मन का पोषण करती हैं, उसे उन्मादित बनाती हैं। वे ही मन में हर क्षण अनेकों वृत्तियाँ पैदा करती हैं। इन्हीं की वजह से पुरुष प्रकृति की लीला का आनन्द लेना चाहता है और अंतत: बंध जाता है। जब इन इच्छाओं का नाश होगा तभी पुरुष अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित होकर उस परम आनन्द में मग्न होगा जिसे वह प्रकृति की वस्तुओं में व्यर्थ ढूँढता फिरता था। इस प्रकार जब मन विषय-वस्तुओं को पुरुष के सामने प्रस्तुत करना बंद कर देगा तब उसका अस्तित्व भी समाप्त हो जाएगा। आखिर वृत्तियों के बिना मन है ही क्या? विचारों के बिना तो मन है ही नहीं। पुरुष का यह बंधन वैराग्य से ही टूटता है।

मोक्ष की दूसरी आवश्यकता अभ्यास है। इसका तात्पर्य लम्बे समय तक की गई निरंतर साधना से है। मन को बारम्बार स्थिर करने की साधना से मन पूर्णतया शान्त और एकाग्र हो जाता है। एक-एक करके चित्त के सभी स्तरों से वृत्तियों का निर्मूलन होते जाता है और साधक को हर स्तर के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है। उसे अलग-अलग सिद्धियों और दिव्य दृश्यों का अनुभव होता है। पर सावधान रहना! सिद्धियों की उन गुमनाम गलियों में कहीं खुद गुम न हो जाना! नहीं तो तुम लक्ष्य चूक जाओगे। अपने लक्ष्य की ओर बिना भूले-भटके आगे बढ़ते रहो। लक्ष्य है कैवल्य या परम स्वतंत्रता। साधना तब तक करते रहो जब तक करने वाला ही न रहे, जब तक अहंकार एवं अविद्या गायब न हो जाएँ और द्वैत भाव का कोई अवशेष न रहे।

सत्यानन्द योग में कक्षा का स्वरूप

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

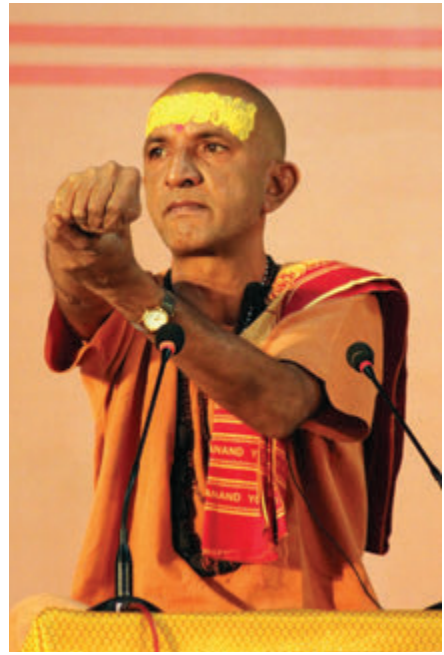

जिस परम्परा से हम लोग आते हैं, उस परम्परा में हमारे गुरु श्री स्वामी सत्यानन्द जी और उनके गुरु श्री स्वामी शिवानन्द जी ने जिस योग के विषय में चिंतन किया है और जिस योग का प्रशिक्षण दिया है, वह केवल शारीरिक योग नहीं है। बल्कि उनका यह मानना है कि प्रत्येक मनुष्य को चार स्तरों पर योग का अभ्यास करना चाहिये।

प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन की अभिव्यक्ति अनेक स्तरों पर करता है। योग मान्यता के अनुसार हमारे शरीर के भीतर और भी शरीर होते हैं। यह भौतिक शरीर जो दिखाई देता है, इसे कहा गया है अन्नमय शरीर। इसका निर्माण अन्न से होता है, पदार्थ से होता है। इसी अन्नमय शरीर के भीतर इससे सूक्ष्म शरीर होता है और वह है प्राणमय शरीर, मतलब ऊर्जा का शरीर। इससे भी सूक्ष्म है मन का शरीर, मनोमय शरीर। उससे भी सूक्ष्म है चेतना का अनुभव, विज्ञानमय शरीर। और उससे भी सूक्ष्म है आत्मानन्द की अनुभूति, आनन्दमय शरीर। ये जो पाँच शरीर हैं, इन्हें योग की भाषा में कहा गया है कोश।

आपने शायद रशियन गुड़िया देखी होगी। उसे खोलो तो उसके अन्दर एक छोटी गुड़िया निकलती है। उसको खोलो तो उससे तीसरी निकलती है। तीसरी से चौथी निकलती है और भीतर में सबसे छोटी गुड़िया रहती है। हमारे कोशों का भी वही सिद्धान्त है। संभवत: रशियन लोगों ने हम लोगों से ही उस सिद्धान्त को लिया है।

हठयोग की पहुँच होती है अन्नमय और प्राणमय कोश तक; मनोमय, विज्ञानमय या आनन्दमय कोश तक नहीं। आप रोज आसन या प्राणायाम का जो अभ्यास करते हो वह आपके अन्नमय और प्राणमय कोशों को ही प्रभावित करता है। मतलब

भौतिक शरीर और प्राणिक ऊर्जा प्रणाली, उससे ज्यादा नहीं। शिथिलीकरण और ध्यान के जो अभ्यास कराए जाते हैं, उनसे मनोमय और विज्ञानमय कोश प्रभावित होते हैं। शिथिलीकरण से मन प्रभावित होता है, मन को स्थिर बनाया जाता है, मन को शान्त किया जाता है और एकाग्रता एवं ध्यान के द्वारा अपनी चेतना का अनुसंधान होता है। तो इन चार प्रक्रियाओं का एक साथ अभ्यास करना चाहिये। ऐसा हमारे गुरु जी का प्रशिक्षण रहा है।

आप में से बहुत-से लोग आसन को ही योग मानते होंगे, लेकिन श्री स्वामीजी ने केवल आसन को ही योग नहीं बताया। केवल आसन को योग मानना उसी तरह है जैसे कोई कहे मेरे हाथ की यह उंगली ही मेरा शरीर है। जो प्राणायाम को ही योग मानता है, वह मानो कह रहा है कि यह दूसरी उंगली ही मेरा शरीर है। लेकिन उंगली शरीर नहीं है और न कभी शरीर का स्थान ले सकती है। वह तो केवल उसका एक अंग है। उसी प्रकार से हठयोग की जो प्रक्रिया है, जिसमें आप आसन-प्राणायाम का अभ्यास करते हो, वह केवल अन्नमय और प्राणमय शरीर को प्रभावित करती है। वह सम्पूर्ण योग नहीं है।

बिहार योग पद्धति में योग का अभ्यास व्यक्तित्व के निर्माण और उत्थान के लिये किया जाता है और इसलिये आसन, प्राणायाम, शिथिलीकरण और एकाग्रता– इन चारों को एक ही कक्षा में, एक क्रम में हम लोगों को करना चाहिये, तब जाकर हम लोग योग के वास्तविक लाभ को प्राप्त कर पायेंगे।

–15 अप्रैल 2014, चेम्बुर, मुम्बई

संस्मरण

सौभाग्यशाली अनुभव

संन्यासी कृष्णप्रेम, मुंबई

जिस प्रकार ग्रीष्म काल के बाद पहली बार जब सावन की फुहार पड़ती है तो सारा वातावरण, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी सब झूम उठते हैं, ठीक उसी प्रकार स्वामीजी का मुंबई आना, मुंबईवासियों के लिये सावन की फुहार की तरह ही आनन्द व शीतलता देने वाला था। हम सब स्वामीजी को मुंबई शहर में देखकर खुशी से झूम उठे थे। सच तो यह है कि जब से हमें यह ज्ञात हुआ कि स्वामीजी अपनी भारत यात्रा के पहले चरण में मुंबई आ रहे हैं, तब से ही हमारा मन बहुत ही प्रसन्न था कि हमें स्वामीजी का दर्शन प्राप्त होगा।

मुंबई के पहले चरण का कार्यक्रम वर्ली के पूर्णत: वातानुकूलित स्पोर्ट्स हॉल में सम्पन्न हुआ। हॉल को बड़ी सादगी व सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाया गया था। हॉल में घुसने से पहले बाहर एक सुन्दर-सा प्रवेश द्वार बनाया गया था जिस पर स्वामीजी के प्रोग्राम का सारा विवरण था। हॉल के बाहर कार्यकर्त्ताओं ने अपना स्टॉल लगाया था। स्टेज को बहुत अच्छे ढंग से सुसज्जित किया गया था। स्वामी शिवानन्द जी एवं स्वामी सत्यानन्द जी की बड़ी फोटो लगी हुई थी और पीछे पूरे स्टेज के आकार का काफी बड़ा बैनर लगा हुआ था। इतनी सुन्दर, सरल व सादगीपूर्ण साज-सज्जा से मन में दिव्यता के बड़े सुन्दर-सुन्दर भाव उमड़ रहे थे।

कहते हैं कि ईश्वर को किसी ने नहीं देखा है। वह कैसा लगता है, उसका कैसा रूप है, कोई नहीं जानता। ईश्वर को जानने-पहचानने के लिये मनुष्य को कितने ही जन्म लेने पड़ते हैं, तब भी उसके स्वरूप का पता नहीं चलता। परन्तु मेरा ऐसा विश्वास है कि ईश्वर के रूप में हमें स्वामी निरंजन जी का साक्षात् दर्शन मिलता है। ईश्वर के दर्शन के लिये कहीं भटकने की जरूरत नहीं है, स्वामीजी के हर एक व्यवहार, वाणी व सत्संग से दिव्यता साफ झलकती है।

इन्हीं सब विचारों में हमारा मन काफी सोच में पड़ा था कि आखिरकार स्वामीजी अपनी भारत यात्रा के पहले चरण मुंबई में 'स्वयं को जानो' के सन्दर्भ में क्या बताना चाहते हैं। हमारी छोटी-सी बुद्धि में कुछ भी समझ नहीं आ रहा था कि स्वामीजी हमें तीन दिन में किस तरह से स्वयं का साक्षात्कार करा देंगे, परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया हमें भी धीरे-धीरे ज्ञात होने लगा कि स्वामीजी किस तरह से हम सबको 'स्वयं को जानना' एक संदेश के रूप में दे रहे हैं।

पहले दिन का पहला सत्र सुबह 6 बजे से शुरू हुआ और वह सत्र था आसन-प्राणायाम-योगनिद्रा इत्यादि का। बिहार योग पद्धति व स्वामीजी के निर्देशानुसार 11 बार महामृत्युंजय मंत्र, 11 बार गायत्री मंत्र व 3 बार दुर्गाजी के 32 नामों से सत्र प्रारम्भ हुआ। मन्त्रोच्चार तथा योगाभ्यास के बाद हम सब में मानो नई ऊर्जा, नये उत्साह का संचार हो गया था। मुंबई जैसे आपा-धापी वाले शहर में सुबह-सुबह आसन-प्राणायाम इत्यादि करने से हमारे शरीर में अमृत की तरह प्राणों का प्रवाह हो रहा था। यहाँ तो लोग सुबह उठते ही नहीं हैं, परन्तु स्वामीजी के प्रभाव से आज हम सब को एक नयी उमंग और उत्साह का अहसास हो रहा था।

पहले सत्र के बाद हम सब व्याकुल थे कि कब स्वामीजी के दर्शन प्राप्त होंगे तथा हम 'स्वयं को जानो' पर उनके विचार सुन पायेंगे। आखिरकार हम सब के इन्तजार की घड़ियाँ खत्म हुईं और स्वामीजी मंच पर आये। उसी बीच संन्यासियों द्वारा बड़ा ही सुन्दर व मनमोहक कीर्तन गाया जा रहा था। सब लोग मन्त्रमुग्ध-से थे और उसी सुन्दर वातावरण में हम सबको स्वामीजी का दर्शन प्राप्त हो रहा था। हमारा मन भावविभोर था कि हम कितने सौभाग्यशाली हैं जो हमें यह अनुभव प्राप्त हो रहा है।

'स्वयं को जानो' के संदर्भ में स्वामीजी ने तीन दिन तक सत्संग दिये और सभी सत्संग एक से बढ़कर एक थे। जिस प्रकार श्री कृष्ण ने अर्जुन को भगवद् गीता का उपदेश दिया था, ठीक उसी प्रकार स्वामीजी हमें उपदेश दे रहे थे कि हम सब के जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य है स्वयं को जानना। 'स्वयं को जानो' की प्रक्रिया तभी सफल हो सकती है जब हम अपने जीवन में सत्यानन्द योग को पूरी तरह आत्मसात् करते हैं, क्योंकि इस योग में ऐसी विधियाँ हैं जिनसे हम स्वयं को जान और पहचान सकते हैं। पूरे विश्व में यह एक ऐसी विद्या है जो अपने में सम्पूर्ण है और जिसका लक्ष्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास है। यह योग सिर्फ आसन-प्राणायाम तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसके द्वारा मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक विकास भी होता है।

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि स्वामीजी काफी व्यथित व चिन्तित हैं कि मुंबई में लोग योग को एक व्यायाम या शारीरिक सौष्टव बढ़ाने का जरिया समझ रहे हैं। जो लोग मुंबई में योग सिखा रहे हैं, उन्होंने भी योग को सिर्फ शारीरिक स्वास्थ्य बढ़ाने तक ही सीमित कर दिया है, परन्तु सत्यानन्द योग व बिहार योग विद्यालय की यह शिक्षा नहीं है। यह योग अपने जीवन को पूर्णता की ओर ले जाने की प्रक्रिया है। स्वामीजी ने यहाँ तक कह डाला कि 'जो भी योग शिक्षक सिर्फ शारीरिक विकास तक सीमित रहकर मुंबई में बिहार योग विद्यालय के नाम पर योग सिखा रहे हैं, वास्तव में उनका बिहार योग परम्परा से कोई सम्बन्ध नहीं। मैं यह चाहता हूँ कि सत्यानन्द योग को इसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया जाए, जिसके लिये यह प्रसिद्ध है।'

स्वामीजी के सभी सत्संग बहुत प्रेरक और प्रभावशाली थे। वर्ली, मुंबई में उन्होंने अंग्रेजी में प्रवचन दिये और चेम्बुर में उनके प्रवचन हिन्दी में थे। मुंबईवासियों के

लिये उनका संदेश बिल्कुल स्पष्ट था कि योग विद्या कोई शारीरिक व्यायाम की विधि नहीं है और न ही इसे पैसे बनाने का साधन समझा जाना चाहिये। सत्यानन्द योग का कभी यह मकसद नहीं रहा है। यह तो उत्कृष्ट जीवन जीने की एक पारम्परिक शैली है। इस योग को आत्मसात् कर मनुष्य न केवल अपना सर्वांगीण विकास करता है, बल्कि अपने जीवन के लक्ष्य 'स्वयं को जानो' की प्रक्रिया को आगे बढ़ाता है। जब एक-एक मनुष्य अपना सर्वांगीण विकास करता है तब हमारा समाज सुन्दर बनता है और फिर समाज के बाद हमारा शहर, हमारा देश सुसंस्कृत और प्रगतिशील बनता है।

इस तरह से स्वामीजी का वर्ली और चेम्बुर में तीन-तीन दिन का कार्यक्रम सुन्दर व मनमोहक भजनों-कीर्तनों तथा प्रेरक सत्संगों के बीच सम्पन्न हुआ। हम मुंबईवासियों के लिये यह सचमुच सौभाग्यशाली अनुभव था जो हमें साक्षात् ईश्वर-स्वरूप स्वामीजी के दर्शन और उनके उपदेश सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

कल्पतरु की छाँव में

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

क्या अष्टांग योग की साधना के बगैर भी परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है?

परमात्मा की प्राप्ति योग से भी हो सकती है और बिना किसी योग के भी हो सकती है। हमें केवल अपनी भावनाओं को शुद्ध रखना है और जब भावना शुद्ध होती है तब ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है। भावनाओं को शुद्ध रखने के लिये आपको द्रविड़ प्राणायाम करने की आवश्यकता नहीं। इसके लिये सरल तरीके से जीयो, वही पर्याप्त है। शबरी ने कौन-सी साधना की थी, कौन-सा ध्यान किया था, कौन-सा मंत्र जपा था? उसके मन में केवल एक ही विश्वास था कि मेरे गुरु ने मुझे कुछ कहा है और उनका वचन कभी निष्फल नहीं हो सकता। केवल उसी श्रद्धा, उसी आस्था के बल पर उसने श्रीराम का दर्शन किया। उसने कौन-सा हठयोग, कौन-सा राजयोग किया था? केवल भाव के कारण उसने अपने आराध्य को प्राप्त किया। भावनाओं की शक्ति, भावनाओं का महत्त्व निश्चित रूप से हर योग से अलग होता है। लेकिन इस भावना को व्यवस्थित करना, दिशा देना भी जरूरी होता है।

क्या हमसे जुड़े लोगों, जैसे माता-पिता या परिवार के सदस्यों के कर्मों का प्रभाव हम पर पड़ सकता है और कितना?

पहली बात तो यह कि हर व्यक्ति एक स्वतंत्र इकाई होता है और इस कारण उसका अपना एक प्रारब्ध, अपनी एक नियति होती है। यह कोई जरूरी नहीं कि संत का बेटा संत ही बने। वह डाकू भी बन सकता है। यह भी कोई जरूरी नहीं कि डाकू का बेटा डाकू ही बने, वह साधु भी बन सकता है। हर व्यक्ति अपने संस्कारों को अपने जीवन में प्रारब्ध के रूप में अभिव्यक्त करता है। हर व्यक्ति की नियति अलग होती है।

लेकिन एक पक्ष और है, वह है हमारे आस-पास के प्रभाव का। यह प्रभाव हमारी मनोदशा का निर्माण करता है। समाज हमें प्रभावित करता है, हमारे कुल की संस्कृति हमें प्रभावित करती है। प्रभाव तो हर जगह से आते हैं। माता-पिता, भाई-बहन, चाचा-चाची, दादा-दादी, नाना-नानी, सब लोगों का प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है। लेकिन यह कोई जरूरी नहीं कि ये प्रभाव हमारी नियति को प्रभावित करें। हमारे गुरु जी का उदाहरण है। उनकी माँ कहती थीं कि बेटा, बड़े होकर समाज सेवा करना। पिता कहते थे कि बेटा, बड़े होकर आई.पी.एस. अफसर बनना। भाई कहता था कि बड़े होकर तुम इंजीनियर बनना। दूसरा भाई कहता था कि बड़े होकर डॉक्टर बनना। बहन कहती थी कि बड़े होकर पादरी बन जाना। सब कोई अपना-अपना मत देते थे।

स्वामीजी सोचते थे कि मैं किसकी बात सुनूँ। अगर माँ की बात सुनूँगा तो पिताजी नाराज हो जायेंगे। अगर पिताजी की बात सुनूँगा तो माँ सोचेंगी कि उनकी कही सारी बातें बेकार हो गईं। अंत में उन्होंने किसी की बात नहीं सुनी। उन्होंने अपनी नियति खुद बनाई, संन्यासी बन गये।

आजकल के घरों में भी यही होता है। विशेषकर इस आधुनिक युग में माँ-बाप की जितनी अपेक्षाएँ हैं, उनके अनुसार बच्चे न करें और वे अपना मार्ग खुद खोजें तो माँ-बाप कहते हैं कि मेरा बेटा तो मेरी बात सुनता ही नहीं। क्यों सुनेगा आपकी? आपको केवल उसे अवसर देना है जीवन में आगे बढ़ने का। इसके बाद उसे अपनी नियति के मार्ग पर बढ़ने दीजिए। यह माता-पिता का दोष है जो बच्चों को अपने बतलाये गए मार्ग पर चलाना चाहते हैं।

आप जिस मार्ग पर चले हैं, क्या आज तक उस मार्ग में संतुष्ट रहे हैं? मेरा यह प्रश्न है आपसे। जब आप अपने मार्ग से संतुष्ट नहीं हैं तो आप क्यों चाहते हैं कि आपका बच्चा भी किसी असंतुष्ट मार्ग पर चलकर अपने जीवन में असंतुष्ट बने। उन्हें नए क्षेत्रों, नए पेशों, नए आयामों में जाने दीजिये, और जब वे ऐसा कर पायेंगे तो आपके ही नाम और यश की वृद्धि होगी। नहीं तो मरने के बाद कोई आपको याद भी नहीं करेगा।

इसलिये यह बात हमेशा याद रखना कि हम बच्चों को अवसर प्रदान करते हैं, उनके लिये व्यवस्था करते हैं, लेकिन उनकी नियति को निर्देशित नहीं करते। बच्चा स्वयं अपनी नियति के अनुसार जीता है। हमारे समाज का यह एक बड़ा दोष है कि वह बच्चों को स्वत: पनपने का अवसर नहीं देता। गुरु जी ने प्रत्यक्ष उदाहरण सामने रखा है। दस साल की उम्र में हमको बाहर भेज दिया। सफल हो या

विफल, तुम अपना रास्ता खुद तय करो, मेरी धोती के पीछे छिपकर नहीं। अगर तुम सफल होगे तो तुम्हारी प्रतिभा है, और अगर विफल होगे तो तुम संन्यासी बनने के योग्य नहीं। सीधी-सी बात।

वे हमारी उँगली पकड़कर हमें बतला रहे हैं कि ऐसा करो, वैसा करो, यह आज तक नहीं हुआ है। हमने भी कभी उनकी उँगली पकड़नी नहीं चाही, क्योंकि हमें विश्वास था कि हमारे गुरु हमें ऐसे अवसर दे रहे हैं जो हमारे हित में हैं। अगर हम उस अवसर में सफल होते हैं तो हमारी उपलब्धि रहेगी और अगर असफल होते हैं तो वह हमारी कमजोरी होगी।

घर, परिवार और समाज में क्या होता है? बच्चा बड़ा हो गया, फिर भी हम लोग कहते हैं, 'बेटा, तुम वह कपड़ा पहन लो, यह कपड़ा ठीक नहीं है। तुम कुछ नहीं खाये हो, खाना खा लो।' बच्चे पर इतना कुछ लाद दिया जाता है कि वह परिवार पर ही निर्भर रहने लगता है। यह आज की स्थिति है।

आप लोग नियति या प्रारब्ध को ठीक से समझ नहीं पाए हो। आप किसी भी अन्य व्यक्ति के लिए जिम्मेदार नहीं, केवल अपने लिए उत्तरदायी हो। आपका बड़ा-सा परिवार हो सकता है, लेकिन परिवार के हर एक सदस्य की अपनी नियति, अपने कर्म, अपने संस्कार हैं। इसलिए उन्हें यह अवसर दो कि वे जीवन की सुन्दरताओं और सीमाओं, दोनों को जान सकें और उसके बाद खुद अपना निर्णय लें। वे जो भी निर्णय लें, उन्हें लेने दो, क्योंकि चाहे वे समृद्धि में रहें या गरीबी में, वे अपनी नियति जी रहे हैं।

क्या योगविद्या में टेलीपैथी जैसी क्षमताएँ यथार्थ हैं? क्या भविष्य में इसे दूरसंचार का माध्यम बनाया जा सकता है?

यह बात निर्विवाद है कि मन और चेतना की अपनी प्रतिभाएँ होती हैं, और जैसे-जैसे परिपक्वता आती है, जैसे-जैसे आंतरिक जागरण होता है, हम मन के एक नये आयाम को प्राप्त कर पाते हैं, और मन के उस नये आयाम को प्राप्त करके फिर उस अवस्था को हम आत्मसात् कर लेते हैं।

रही बात टेलीपैथी की। अगर कोई रेडियो स्टेशन चालू कर दिया जाए, वहाँ से तरंगें निकलना शुरू हो जाएँ, लेकिन सभी के ट्रांज़िस्टर बंद हों तो कौन उन तरंगों को पकड़ेगा? सभी का तो रेडियो बंद पड़ा हुआ है। मन में अतीन्द्रिय शक्तियाँ अवश्य होती हैं। अतीन्द्रिय अवस्था में इन्द्रियों से जो सम्पर्क होता है, वह टूटता है, इसलिये कहा गया है 'अतीन्द्रिय'। अभी आपके संवाद और संचार का जो तरीका है, उसका माध्यम इन्द्रियाँ हैं। जब तक हम चेतना के इस स्थूल आयाम में हैं, इन्द्रियों की प्रधानता रहती है, क्योंकि वही हमारे जीवन की अभिव्यक्ति की माध्यम बनती हैं। लेकिन जब हम इन इन्द्रियों की संवेदनाओं और चंचलताओं

को शान्त करके मन की जाग्रत अवस्था में पहुँचते हैं, तब हम धीरे-धीरे अतीन्द्रिय स्तरों, अनुभवों और क्षमताओं को प्राप्त करते हैं।

आखिर टेलीपैथी क्या है? जैसे तुम्हारी मौखिक वाणी होती है, वैसे ही टेलीपैथी मानसिक वाणी है। लेकिन अगर हम तुम्हें टेलीपैथी द्वारा कुछ संप्रेषित करना चाहें और तुम्हारा रेडियो ऑफ हो तो कौन रिसीव करेगा। जब तक तुम रेडियो को ऑन नहीं करोगे, सही चैनल पर नहीं जाओगे, तब तक वह कनेक्शन नहीं पकड़ेगा।

गुरु हमेशा अपनी मनोशक्ति द्वारा सूक्ष्म स्तर पर लोगों तक पहुँचते हैं। कुछ लोग होते हैं जो अनुभव कर लेते हैं और कुछ कहते हैं मुझे तो कुछ नहीं हुआ। अब इसमें न गुरु का दोष है, न चेले का। लोगों ने तो अपना रेडियो ऑन किया नहीं है, फिर क्यों सोचते हैं कि गुरु जी हमसे संपर्क करें।

टेलीपैथी, जिसे तुम एक सिद्धि मानते हो और जिसके पीछे भागते हो कि अगर मैं ऐसा कर पाऊँ तो सबसे श्रेष्ठ हो जाऊँगा, मनुष्यों को कंट्रोल कर पाऊँगा, यह तुम्हारे अहंकार और महत्त्वाकांक्षा को दर्शाता है। हमारे पास लोग कुण्डलिनी जगाने के लिये आते हैं। सोचते हैं कि अगर जग जाए तो हम बिज़नेस अच्छा कर लेंगे, दूसरों को प्रभावित करेंगे। यह उनकी महत्त्वाकांक्षा बोल रही है, जो पूरी तरह स्वार्थी है। ऐसी हालत में वह प्रतिभा कभी हासिल नहीं हो सकती, क्योंकि तुम अपनी चेतना को और भी स्थूल, सांसारिक और विषयी बना रहे हो। ऐसी मानसिकता के साथ तुम कभी मन का जागरण नहीं कर सकते। इसलिये हम बार-बार कहते हैं कि टेलीपैथी जैसी चीजों को भूल जाओ, भूल जाओ, भूल जाओ, और अभी तुम्हारी जो स्थिति है उसे ठीक करो, ठीक करो, ठीक करो।

मंत्र जप करते समय माला का क्या प्रयोजन होता है?

माला आपके मन को मंत्र में टिकाकर रखती है। अगर जप करते समय झपकी आए या मन अंतर्मुखी हो जाए तो वह कौन-सी शारीरिक गतिविधि है जो तुम्हें याद दिलाएगी कि तुम मंत्र जप कर रहे हो। हमारे गुरु जी इस सम्बन्ध में एक उदाहरण देते थे। एक पक्षी बीच सागर में उड़ान भर रहा है। उड़ते-उड़ते उसके पंख थक रहे हैं, लेकिन पानी में उतरकर कहाँ विश्राम करेगा? उड़ते-उड़ते वह देखता है कि समुद्र में कोई लकड़ी का टुकड़ा तैर रहा है। उसपर वह उतरता है, विश्राम करता है और उसके बाद फिर वह उड़ान भरता है।

जब दूसरी बार वह उड़ान भरेगा तो हमेशा उस लकड़ी को अपनी नजर में रखेगा कि जब मैं थक जाऊँ तो फिर वहाँ जाकर आराम कर लूँ। आराम करने के बाद वह फिर दूसरी दिशा में उड़ान भरेगा। लेकिन उस लकड़ी से ज्यादा दूर नहीं जायेगा, क्योंकि वह उसकी स्थिरता का केन्द्र है। अगर वह स्थिरता का केन्द्र न मिले, तो वह थककर पानी में गिर जायेगा।

माला इसी लकड़ी का काम करती है जिसपर तुम आप अपनी अंतर्यात्रा के समय अपने को विश्राम देने के लिये उतर सकते हो। बहुत बार ध्यान करते-करते जब शरीर की सुधबुध खो जाती है, उस समय आदमी थोड़ा असुरक्षित महसूस करता है। तुम आँख बन्द करके बैठो और लगे कि तुम्हारा शरीर नहीं है तो घबराओगे कि नहीं? मतलब उस चीज को सहज रूप से स्वीकार नहीं कर पाओगे। पहला भय होगा कि यह क्या, मेरा शरीर कहाँ गायब हो गया।

एक बार कुछ ऐसा ही हुआ था हमारे आश्रम में। डेनमार्क का एक संन्यासी आश्रम में आए और पता नहीं उसके मन में क्या भाव आया, एक दिन आईने के सामने खड़े होकर अपने भ्रूमध्य पर त्राटक करने लगा। दस मिनट तक त्राटक करते-करते उसने देखा कि उसका सिर ही गायब हो गया है। अब वह एकदम घबराया और चिल्लाते हुए बोला कि मेरा सिर गायब हो गया! हम लोग देख रहे हैं कि उसका सिर ही बात कर रहा है, तो उससे कहते हैं कि तुम्हारा सिर तो यहीं है, कहाँ गायब हो गया। कहता है नहीं, नहीं, मेरा सिर नहीं है। मतलब एक ऐसी अवस्था आई जब शरीर और इन्द्रियों से उसका सम्बन्ध टूट गया। गुरु जी ने उसे अपने खोपड़ी के अस्तित्व को बतलाने के लिये एक तमाचा मारा। जब उसे दर्द हुआ तो वह बोला, हाँ, अब मेरा सिर वापिस आ गया है। उसके पहले तक हम लोग उसे कितना बोल रहे थे कि भाई, तुम्हारा सिर तुम्हारे धड़ के ऊपर ही है, कहीं गया नहीं है, लेकिन वह किसी की बात नहीं मान रहा था। जब उसे दर्द की अनुभूति हुई तब उसकी चेतना दर्द में आकर टिकी और फिर वह चैतन्य हो गया।

जप या ध्यान की अवस्था में जब हम शारीरिक चेतना को कभी-कभी भूलने लगते हैं, तब उस समय हमारा ध्यान माला की गति पर जाता है और वह हमें फिर से मंत्र के साथ जोड़ता है। इसलिये जप में माला का प्रयोग होता है।

समापन संदेश

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

इस योगोत्सव को समापन की ओर ले जाने से पहले मैं आपको अपने दिल की बात कहना चाहूँगा। पिछले तीन दिनों से यहाँ पर हमें जो आनन्द आया, ऐसा आनन्द पाँच साल में पहली बार आ रहा है, क्योंकि इस बार पहली बार हम आसन-प्राणायाम की शिक्षा देने के लिये नहीं आये हैं। वह कार्य तो हो रहा है यहाँ के शिक्षकों के द्वारा। यहाँ जो संन्यासी आते हैं वे भी सिखलाते हैं। लेकिन योग का जीवन के साथ जो सम्बन्ध है, उस सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिये, और योग की विद्या, विज्ञान और उपलब्धि को समझाने के लिये इस बार यहाँ पर आना हुआ है, इस विश्वास के साथ कि अगर हम इस विद्या को अपने जीवन में आत्मसात् कर लें तो हमारे जीवन का, हमारी संस्कृति का उत्थान होगा।

संस्कृति की क्या परिभाषा है? *सम्यक् कृतेन इति संस्कृति:*—जीवन में सम्यकता का आना ही संस्कृति है। सम्यकता का मतलब होता है सामंजस्य और संतुलन, दु:ख और सुख दोनों में संतुलन। इसी प्रतिभा को हमें प्राप्त करना है, और इसे प्राप्त करने की शिक्षा योग हमें देती है। यहाँ पर जो योग साधना केन्द्र हैं, वह पिछले पच्चीस वर्षों से योग के कार्यक्रमों का संचालन करते आया है। इस केन्द्र से जुड़े जितने भी शिक्षक और सहयोगी हैं, वे बहुत प्रवीण हैं और योग के लिये उन्होंने अपना जीवन समर्पित किया है। उनके माध्यम से योग का जो प्रकाश यहाँ चेम्बुर में फैल रहा है और लोगों के जीवन को आलोकित कर रहा है, उसे देखकर हमें बहुत प्रसन्नता होती है।

जब तक हम लोग योग के मार्ग पर चलते हैं, तब तक हमारा यहाँ आना होता रहेगा। लेकिन जब हम लोग सहज योग के मार्ग से विमुख हो जायेंगे और अपने आपको अहंकार, ईर्ष्या और घमण्ड से जोड़ने लगेंगे तब उस दिन से मेरा आना यहाँ पर बन्द हो जायेगा, क्योंकि मैं योग के लिये आता हूँ वियोग के लिये नहीं। जब तक हम लोग योग के संकल्प में साथ हैं, हम और आप एक दूसरे से हमेशा मिलते रहेंगे और एक-दूसरे को हमेशा कदम-दर-कदम आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करते रहेंगे। इस बात को हमेशा ध्यान में रखिये ताकि हम लोग एक संकल्प से जुड़कर मानवता के उत्थान के लिये मनीषियों की शिक्षा, उनके संकल्प और उनके प्रसाद का वितरण अपने समाज में कर सकें। हमें उनकी शिक्षाओं को अपने जीवन में आत्मसात् करना है ताकि अंत में हम उनके उस वाक्य को समझ पायें, जिसमें वे कहते थे, *'आत्मदीपो भव'*—तुम स्वयं ज्योति बनो।

योग विद्या के माध्यम से आप अपने भीतर इस ज्योति को पुन: एक आदर्श के रूप में स्थापित कर पायेंगे। ज्योति को जलाने के लिये किसी बड़ी ज्वाला की

नहीं, केवल एक छोटी-सी माचिस की तीली की आवश्यकता होती है। हजारों वर्षों का अंधकार भी माचिस की एक तीली से एक क्षण में जा सकता है।

इसलिये हम लोगों का धर्म और कर्तव्य बनता है कि हम अपने जीवन को अध्यात्म की ज्योति से प्रज्ज्वलित करने के लिये योग की इस चिंगारी का उपयोग करें, ताकि हमारे जीवन का अंधकार, हमारे जीवन की दुर्दशा और दुर्गति समाप्त हो जाए और हम सुख, शान्ति और समृद्धि को पुन: पाकर जीवन में सफलता को प्राप्त करें। यही हमारे मनीषियों की, हमारी गुरु परम्परा की देन है और इसके लिये हम सबकी मंगल कामना आप सबके साथ है।

हरि: ॐ तत्सत्

–15 अप्रैल 2014, चेम्बुर, मुम्बई

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

प्रवृत्ति एवं निवृत्ति

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 70, ISBN: 978-93-81620-10-6

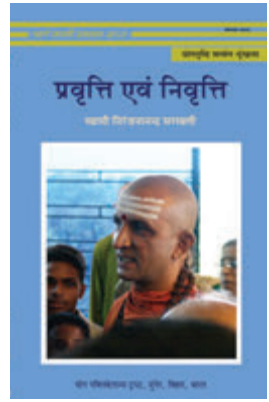

स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन

स्वामीजी ने जून 2010 की योगदृष्टि सत्संग शृंखला में प्रवृत्ति एवं निवृत्ति-मार्ग के विवेचन की शुरुआत एक प्रतीकात्मक कथा से की, जिसका मुख्य नायक, आत्माराम, अपने गन्तव्य, ब्रह्मपुरी की ओर यात्रा कर रहा है। इस कथा को आधार बनाकर स्वामीजी ने बहुत सुन्दर ढंग से प्रवृत्ति तथा निवृत्ति मार्ग के मुख्य लक्षणों, साधनाओं और लक्ष्यों का निरूपण किया है। सांसारिक जीवन जीते हुए भी किस प्रकार सुख, सामंजस्य और संतुष्टि का अनुभव किया जा सकता है; जीवन के किस मोड़ पर साधक वास्तविक रूप से आध्यात्मिक मार्ग पर आता है; और साधक की इस यात्रा में मार्गदर्शक की क्या भूमिका होती है – आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्धित इन सभी आधारभूत प्रश्नों का उत्तर इन सत्संगों में निहित है।

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603, 09304799615 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

सत्यानन्द योग वेबसाइट

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, शिवानन्द मठ, सीता कल्याणम् महोत्सव तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.rikhiapeeth.in

यह वेबसाइट सभी साधकों के लिए स्वामी शिवानन्द जी की 'सेवा, प्रेम और दान' की मौलिक शिक्षाओं से जुड़े रहने का सुगम साधन है। यहाँ रिखियापीठ की गतिविधियों, कार्यक्रमों और सत्रों की जानकारी के अतिरिक्त प्रेरक सत्संग भी उपलब्ध हैं।

'यौगिक जीवन' स्वामी निरंजन के संग

www.biharyoga.net/living-yoga/ पर श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के मिशन सम्बन्धी लेख, संदेश एवं समाचार उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net

योगा पत्रिका के लेखों के संग्रह तथा पूरे विश्व में सत्यानन्द योग केन्द्रों और शिक्षकों के सम्पर्क सूत्रों और गतिविधियों की जानकारी के लिए इस वेबसाइट को देखें।

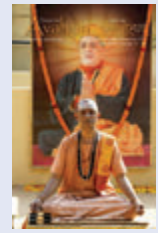

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/13-15
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

bar code

गंगादर्शन के सत्र एवं कार्यक्रम 2015

फरवरी 1 - मई 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (हिन्दी)
फरवरी 14	बाल योग दिवस
मार्च 1-30	योग अनुदेशक सत्र (हिन्दी)
मार्च 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र - दमा (हिन्दी)
जून 1 - जुलाई 25	द्विमासिक योग विज्ञान एवं जीवनशैली परिचय सत्र (हिन्दी)
जुलाई 27-30	स्वामी निरंजन के सान्निध्य में गुरु पूर्णिमा सत्संग एवं आराधना
जुलाई 31	गुरु पादुका पूजन
अगस्त 2015 - मई 2016	योग अध्ययन में डिप्लोमा (अँग्रेजी)
अगस्त 1-30	योग अनुदेशक सत्र (अँग्रेजी)
सितम्बर 8	स्वामी शिवानन्द जन्मोत्सव
सितम्बर 12	स्वामी सत्यानन्द संन्यास दिवस
अक्टूबर 1-30	सत्यानन्द योग शिक्षकों के लिए बिहार योग प्रशिक्षण (अँग्रेजी)
अक्टूबर 1 - जनवरी 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (अँग्रेजी)
अक्टूबर 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र - मधुमेह (हिन्दी)
नवम्बर 1-7	स्वामी निरंजन के साथ योग साधना एवं स्वाध्याय सप्ताह
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार 811201

फोन : 06344-222430, 06344-228603, 9304799615 फैक्स : 06344-220169

वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।